卐 ॐ 卐

- द्वितीय सत्र -

मानव धर्म का प्राकृतिक स्वरूप

चित्त को सतत आनन्द की स्थिति में बनाए रखने तथा कर्म बन्धन से मुक्ति पाने हेतु जो नियम आचरण में लाये जायें, वही धर्म है। क्योंकि प्रकृति के नियमों के अनुसार चलने में ही मानव को सुख, शान्ति एवम् मृत्यु से मुक्ति मिलना सम्भव है, अतएव प्राकृतिक सिद्धान्त ही मानव धर्म के आधार हैं। जो लोग मानते हैं, कि 'ईश्वर है' उनका कहना है, कि परमात्मा सृष्टि का निर्माण, पालन एवम् संहार विशिष्ट नियमों के आधार पर करता है। इस सारी प्रक्रिया को यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञात होगा, कि -

1. पूरी सृष्टि में सर्वत्र गति ही गति है। जैसे कि पृथ्वी, ग्रह, सूर्य, चन्द्र, राशियाँ, नक्षत्र तथा सभी आकाशगंगाएं किसी अव्यक्त शक्ति केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाती हैं तथा साथ ही वे सतत् अपनी धुरी पर भी घूर्णन करती हैं। **2.** अरबों आकाशगंगाओं का सृजन, शक्ति के स्थायित्व (Law of Conservation of Energy) के आधार पर सतत् होता रहता है तथा एक निश्चित काल के पश्चात् उनके अधिकांश भाग के विकीरण हो जाने पर वे कृष्ण शक्ति (Dark Energy) बनकर महाकाश में अदृश्य हो जाती हैं। ये सारी आकाशगंगाएं विघटन से पूर्व अपने प्रकाश कणों (Photon Particles) की वर्षा द्वारा मृत पड़ी अदृश्य आकाशगंगाओं को जीवन्त कर जाती हैं। इसी प्रकार सृष्टि का क्रम अनवरत चलता रहता है। **3.** इस पूरी सृष्टि की सृजन, पालन एवम् संहार प्रक्रिया में एक निश्चित योजना (विद्या) है, जिस योजना को पूरा करने हेतु सृष्टि का हर अंग पूरी निष्ठा से (सत्य के आधार पर) सतत् क्रियाशील रहता है। अतः उपरोक्त विश्लेषण से जो निष्कर्ष निकलते हैं, वे निम्न बातों पर प्रकाश डालते हैं :- ***(a)*** सृष्टि का निर्माण एक विशिष्ट योजना (विद्या) के आधार पर हुआ है। ***(b)*** सृष्टि में सर्वत्र अनुशासन (तप) है। ***(c)*** सृष्टि में निरन्तर देने (दान) की प्रवृत्ति निहित है तथा ***(d)*** सृष्टि के सभी अंग सत्य के आधार अर्थात् प्रकृति के शाश्वत नियमों के आधार पर कार्य करते हैं।

भारतीय ऋषियों ने इस सारी प्रक्रिया का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया और पाया, कि सृष्टि रचना, पालन एवम् संहार में उपरोक्त चार नियम ही कार्य करते हैं। इन विशिष्ट चारों नियमों को उन्होंने ***'धर्म'*** शब्द की संज्ञा प्रदान की। भगवान शंकर को ***'महेश्वर'*** (महान ईश्वर अर्थात् महान शासक) तथा ***'आदि देव'*** माना और उनके वाहन को ***'वृष'। इस प्रकार भगवान 'शंकर' परमात्मा के 'प्रतीक' देव हैं तथा उनका वाहन वृष, धर्म का 'प्रतीक' है।*** भगवान शंकर सदैव वृष पर आरूढ़ रहते हैं अर्थात् वे सदैव धर्म के अनुसार सृजन, पालन एवम् संहार प्रक्रिया का संचालन करते हैं। वृष के चार पाद हैं अर्थात् धर्म के चार मुख्य नियम हैं :-

(i) विद्या *(ii)* दान *(iii)* तप तथा *(iv)* सत्य[a]।

***(i)* विद्या :-** सृष्टि निर्माण का उद्देश्य, प्रारूप, विस्तार, पालन एवम् संहार प्रक्रिया की जानकारी को प्रकट करने की कला का नाम विद्या है।

आकाशगंगाओं से बरसते फोटॉन (प्रकाश) कण

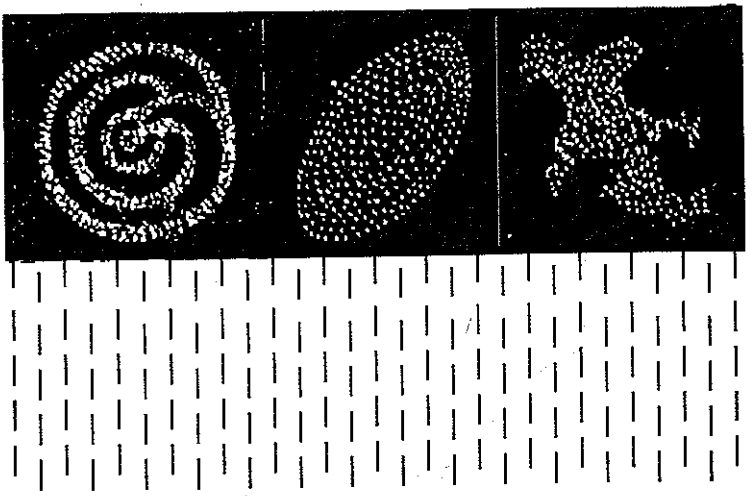

चित्र : 2.01

***(ii)* दान :-** जैसा कि उपर्युक्त वैज्ञानिक विश्लेषण में कहा गया है कि आकाशगंगाएं अपने मृत होने से पूर्व अन्य कृष्ण शक्ति (Dark Energy) बनी आकाशगंगाओं को जीवन्त कर जाती हैं और ऐसा करने में उन आकाशगंगाओं के द्वारा प्रकाश कणों (Photons) के दान से नयी आकाशगांगाओं का पुनर्जन्म हो जाता है, अर्थात् यह दानशीलता की प्रवृत्ति ही सृष्टि की योजना का अंश है। 'रामचरितमानस' में प्रकृति की इस यज्ञ भावना (दानशीलता) को निम्न प्रकार से दर्शाया गया है -

"संत बिटप सरिता गिरि धरनी, परहित हेतु सबन्ह के करनी[b] ।"

अर्थ :- वृक्ष, नदियाँ, पर्वत, पृथ्वी एवम् संत, ये सभी दूसरों की भलाई के लिए निरन्तर अपना सर्वस्व देते रहते हैं, जैसे - वृक्ष - फल, फूल आदि देकर, नदियाँ - सुस्वाद एवम् शीतल जल देकर, पर्वत - वर्षा का कारण बनकर तथा वृक्ष एवम् वनस्पतियों का उत्पादन करके दान क्रिया को पूरा करते हैं। पृथ्वी - सम्पूर्ण प्राणियों के हितार्थ भोजन उत्पन्न करके व सभी को धारण करके अपने धर्म (कर्त्तव्य) का पालन करती है तथा संत जन दूसरों के हितार्थ स्वयम् कष्ट भोगते हैं।

***(iii)* तप :-** आकाशगंगाएं निरन्तर गतिशील रहकर गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) उत्पन्न करती हैं। यह गतिज ऊर्जा, अन्य ऊर्जाओं में परिवर्तित होती रहती है और इस प्रकार सृष्टि को क्रियाशील बनाए रखती है। सूर्य, तारे, नक्षत्र, ग्रह, सभी ज्योतिर्पिण्ड

---

a *श्रीमद् भागवत महापुराण, प्रथम खण्ड, पन्द्रहवाँ संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2047 पृष्ठ 253*

b *श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड दो. 124-125 के मध्य*

घूर्णन करते हुए सम्पूर्ण प्राणी जगत के जीवन को सुचारु रूप से चलाते हैं। वृक्ष, नदियाँ, पर्वत, पृथ्वी एवम् संत, ये सभी अनेकानेक कष्टों को सहन करते हुए ईश्वरीय नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं तथा अपना सर्वस्व दूसरों को देते रहते हैं। इसी कर्म को 'तप' की संज्ञा दी गयी है।

***(iv)* सत्य :-** पूरी सृष्टि का प्रत्येक अंश सत्य का पालन करता है अर्थात् प्राकृतिक (देव) शक्तियाँ परमात्मा द्वारा बनाए नियमों का पूरी निष्ठा (सत्यता) से तथा निष्काम भाव से सतत् पालन करती हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है, कि प्रकृति में सर्वत्र नियमबद्धता है अर्थात् तप रूपी धर्म को सत्यता से धारण किया जा रहा है इसीलिए इतनी विशाल प्रकृति में पूर्ण व्यवस्था व स्थिरता रहती है। अत्यधिक गति अथवा अनन्त कालावधि के कारण भी कहीं कोई अव्यवस्था नहीं है। अतएव मानव के हित में भी यही है, कि वह भी प्रकृति के नियमों का अनुकरण करे, जिससे वह भी व्यवस्थित एवम् शान्तिपूर्ण जीवन जीते हुए मृत्यु के पश्चात् ईश्वर में लीन हो जाये।

उपर्युक्त चारों सिद्धान्त 'वैदिक धर्म' के प्रकृति प्रदत्त सिद्धान्त हैं, ***अतएव यही मानव धर्म है।***

मानव जीवन में विद्या का अर्थ 'ज्ञान' से है। यही विद्या (जानकारी) मानव जीवन में तीन आयामों, अर्थात् *1.* कर्त्तव्य निष्ठा *2.* नियम बद्धता एवम् *3.* स्व अनुशासन को प्रकट करती है तथा मानव जीवन को सार्थक बनाती है। अतः निम्न पंक्तियों में मानव जीवन के इन्हीं तीनों नियमों को जो ज्ञान (विद्या) से ही जाने जाते हैं, पर प्रकाश डाला जा रहा है :-

1. कर्त्तव्य :- जीवन का सबसे पहला सुख है **'निरोगी काया'**। संसार के सुखों का उपभोग हो अथवा धर्म का आचरण निरोगी काया के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। अतएव मानव को ब्रह्ममुहूर्त अर्थात् रात्रि के तीसरे पहर में उठकर प्रकृति की नीरवता का आनन्द लेना चाहिए। यह समय शारीरिक एवम् मानसिक स्वास्थ्य, दोनों के लिए श्रेष्ठ समय है। इस समय प्रकृति में नीरवता के कारण ध्यानादि करना सरल होता है। नित्यकर्म से निबट कर स्वच्छ वायु में आवश्यक योगासन एवम् प्राणायाम आदि करके शरीर को स्वस्थ बनाना चाहिए। प्रातः काल में सूर्य दर्शन, देव दर्शन करके सात्विक विचारों से अपने मन-मस्तिष्क को परिष्कृत करना कर्त्तव्य है। स्नानादि करके दैनिक-संध्या, पूजन, जप, ध्यानादि से चित्त को सकारात्मक विचारों से परिपूर्ण करना एवम् शक्तिशाली बनाना श्रेयस्कर है। तत्पश्चात् जीविका के लिए अपने दैनिक संघर्ष में उतरना चाहिए।

2. नियम :— चूँकि हर व्यक्ति अपने परिवार तथा एक बड़े समूह (समाज) का अंग होता है, अतएव उस पर समाज को सुखी एवम् संतुलित बनाए रखने का भी दायित्व है। यदि समाज सुखी व स्वस्थ होगा, तो व्यक्ति भी सुखी होगा तथा सर्वत्र अमन व शान्ति रहेगी। अतएव विशाल परिप्रेक्ष्य में तथा व्यापक दृष्टिकोण से हर व्यक्ति को

समाज एवम् राज्य के द्वारा बनाए गये नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना हितकर है। यातायात नियमों से लेकर राज्य द्वारा बनाए गये टैक्स के नियमों तक उनका पूरी तरह से अनुपालन करना कर्त्तव्य है। यज्ञोपवीत के तीन धागों से बँधे तीन व्रतों :- *(a)* माता-पिता, गुरुजनों की सेवा, आदर एवम् उनकी पालना। *(b)* समाज के पिछड़े, कमजोर वर्ग की शिक्षा-दीक्षा एवम् भरण-पोषण। *(c)* वैदिक सिद्धान्तों की रक्षा एवम् प्रचार-प्रसार का निष्ठापूर्वक पालन करना आवश्यक है। ***समाज के पिछड़े एवम् कमजोर वर्ग अर्थात् दरिद्रनारायण की सेवा करना 'गो सेवा' है।*** राज्य के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति, विशेषकर वानप्रस्थियों के द्वारा उपरोक्त कर्त्तव्यों के पालन करने से समाज में सर्वत्र संतोष, सुख-शान्ति एवम् व्यवस्था बनी रहती है। इस प्रकार की ***उत्तम व्यवस्था आधुनिक साम्यवादी एवम् समाजवादी सोच से भी कहीं श्रेष्ठ व्यवस्था भारतीय ऋषियों से हमें विरासत में मिली है, जिसे पुनः लागू करना हम सबका पुनीत कर्त्तव्य है।***

3. स्व-अनुशासन :– ***मानव जीवन का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।*** इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उसे स्व-अनुशासन द्वारा उन कर्त्तव्यों को पूरा करना चाहिए, जिससे उसका आवागमन का चक्र समाप्त हो जाए। ***अतएव 'धर्म' वह आचार संहिता है, जिसके पालन करने से अर्थात् जिसको जीवन में धारण करने से मानव को उसके जीवन की सर्वोत्तम स्थिति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो।*** धर्म को धारण करते हुए मानव को अनेक कष्ट भोगने पड़ सकते हैं, अतः सभी प्रकार की आपदाओं को झेलकर भी यदि मानव, दृढ़ता एवम् साहसपूर्वक धर्म-पथ पर चलता रहे, तो उसे बारम्बार के जीवन धारण से छुटकारा मिल सकता है। भारतीय ऋषियों ने इसे **'तप'** की संज्ञा दी है और भारतीय वाङ्मय ऐसे अनेक तपस्वियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है, कि जिन्होंने सब के प्रति आत्म भाव रखते हुए महान यातनाएं सहकर भी धर्म-पथ का त्याग नहीं किया। उदाहरणार्थ - राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी राजा थे। क्योंकि सत्य को जीवन में धारण करना धर्म का प्रथम सूत्र है, अतः उन्होंने अपने पुत्र की मृत्यु तक को स्वीकार किया, एक डोम के घर पर नौकरी की, परन्तु किसी कीमत पर भी सत्य-पथ से नहीं डिगे। अर्थात् उन्होंने प्रकृति के ***'दानशीलता'*** के विधान को बनाए रखने हेतु हर प्रकार का कठिनतम त्याग किया और अन्त में इतनी कड़ी परीक्षा के पश्चात् उन्हें मोक्ष जैसी दुर्लभ स्थिति की प्राप्ति हुई।

भक्त प्रहलाद ने अपने पिता द्वारा दी गयी अनेक यातनाओं को सहन किया, परन्तु धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा और अन्त में भगवान नरसिंह के रूप में परमात्मा का साक्षात्कार किया। पाँच वर्ष के बालक ध्रुव ने भी घने जंगल में जाकर विष्णु भगवान का ध्यान व जप करके अमर पद की प्राप्ति की। दानियों में श्रेष्ठ राजा बलि ने भी सत्य का पालन करते हुए वामन भगवान को तीन पग पृथ्वी का ***'दान'*** किया और अन्त में भगवान को अपने द्वारपाल (रक्षक) के रूप में प्राप्त किया। दानवीर कर्ण ने महाभारत के युद्ध में आहत होने के पश्चात् भी अपने पास याचक के रूप में आए श्रीकृष्ण व अर्जुन को मृत्यु की अन्तिम घड़ी में भी सोने के दाँत का ***'दान'*** देकर अपने प्रण का निर्वहन किया। क्योंकि

इस चरम स्थिति (मोक्ष) की प्राप्ति मानव योनि में ही सम्भव है, अतएव हर सम्भव उपाय से इसी जन्म में इसे प्राप्त करने का प्रयास करना कर्त्तव्य है।

इस प्रकार के स्व-अनुशासन अर्थात् निष्काम कर्म की सीख हमें सर्वप्रथम प्राकृतिक शक्तियों से ही मिलती है। भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं, कि निष्काम कर्म की शिक्षा सर्वप्रथम उन्होंने सूर्य को दी थी और यह शिक्षा परम्परा से पर्याप्त समय तक प्रचलित भी रही, परन्तु बहुत काल से यह ज्ञान [a] लुप्तप्राय हो गया था।

वस्तुतः सूर्य 'निष्काम सेवा' का महाप्रतीक है, इसीलिए सूर्य का अनुकरण करते हुए – प्रकृति का कण-कण परमात्मा द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों को पूरा करने में निरन्तर संलग्न रहता है। जैसे - अग्नि का 'धर्म' (कर्त्तव्य) है ***गर्मी*** देना तथा जल का 'धर्म' (कर्त्तव्य) है ***शीतलता*** देना एवम् सूर्य का 'धर्म' (कर्त्तव्य) है ***प्रकाश, ऊर्जा*** एवम् ***ताप*** देना ***अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति में सर्वत्र 'निष्काम-कर्म' किया जा रहा है अथवा 'यज्ञ' हो रहा है।*** ऑक्सीजन चक्र (Oxygen cycle) का उदाहरण लें, तो हम देखते हैं, कि श्वॉस द्वारा खींचा गया वायु, फेफड़े में पहुँचकर रक्त को शुद्ध करके कार्बन डायऑक्साइड (CO_2) के रूप में बाहर आता है, जिसे पेड़-पौधे प्रकाश की सहायता से तोड़ देते हैं और कार्बोहाइड्रेट ($C_6H_{12}O_6$) के रूप में अपना भोजन बना लेते हैं तथा ऑक्सीजन अणु (Molecule) को मुक्त कर देते हैं। इस प्रकार ऑक्सीजन का अणु (Molecule) अपने निहित कर्त्तव्य को पूरा करने के पश्चात् स्वतन्त्र हो जाता है। ***अतएव मानव के हित में भी परमात्मा द्वारा निर्धारित यही सर्वश्रेष्ठ मानव धर्म है,*** क्योंकि इस प्रकार मानव को स्वतः ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् मानव सदैव के लिए सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा जाता है। ***सम्पूर्ण गीता में यही शिक्षा दी गयी है।*** श्रीरामचरितमानस में स्वयम् श्रीराम जी ***'धर्म'*** की परिभाषा करते हुए कहते हैं -

·परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
त्यागहि कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक [b] ***।।***

भावार्थ :- श्रीराम जी (सभासदों को) समझाते हुए कहते हैं, कि ***दूसरों की भलाई करना ही सच्चा धर्म है तथा दूसरों को कष्ट देना ही नीच कर्म है।*** दूसरों की भलाई करके इस कर्म को ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए अर्थात् कर्त्ता भाव का त्याग कर देना चाहिए, ऐसा करने से वह कर्म किसी प्रकार का शुभ अथवा अशुभ फल उत्पन्न नहीं करेगा और मानव, कर्म-बन्धन से मुक्त हो जायेगा। यही जानकर देवता तथा श्रेष्ठ मुनि निरन्तर मेरा

---

a ***इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।*** *(गीता-4/1)*
श्री भगवान बोले - मैंने इस अविनाशी (निष्काम) योग को सूर्य से कहा था; सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा ।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः । स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ।। *(गीता-4/2)*
हे परन्तप अर्जुन ! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस (निष्काम) योग को राजर्षियों ने जाना; किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वीलोक में लुप्तप्राय हो गया ।

b *श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड दो. 40-41 के मध्य*

भजन करते हैं। ***सारांश यह है, कि दूसरों की भलाई करने, कर्त्ता भाव का त्याग करने तथा निरन्तर भगवान का भजन करते रहने से मानव को मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। यद्यपि कर्त्ता भाव का त्याग करना सरल कार्य नहीं है, फिर भी धर्म का यही सच्चा मार्ग है।***

अतएव इस प्राकृतिक तकनीक को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है, कि जिसके धारण करने से अथवा जिसका अनुसरण करने से मानव को, समाज को, राष्ट्र को, विश्व को एवम् प्राणी मात्र को सुख, शान्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति हो, ***अतएव 'यज्ञ' (निष्काम कर्म) ईश्वर को प्राप्त करने की सार्वभौमिक तर्कनीक है*** हमें समाज में प्रचलित मध्यकालीन छोटी-छोटी परिभाषाओं से ऊपर उठना होगा। ***हमारे संस्थान का यह मुख्य बिन्दु है।*** इसकी विशद जानकारी समाज को देनी है।

धर्म के व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए शास्त्रों में धर्म के दस लक्षण निम्न प्रकार से बतलाये गये हैं -

धृतिः, क्षमा, दमो, स्तेयम्, शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या, सत्यम्, अक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम् [a] ।।

अर्थात् ✣ *हर परिस्थिति में धैर्य रखना* ✣ *सभी को क्षमा करना* ✣ *मन में उठने वाले बुरे विचारों को कठोरता से रोक देना* ✣ *छुपकर अथवा चोरी से कोई कार्य न करना* ✣ *मन से, वचन से तथा कर्म से शुद्ध आचरण करना* ✣ *इच्छाओं पर नियन्त्रण रखना* ✣ *बुद्धि अर्थात् विवेकपूर्वक सत् कार्य करते रहना* ✣ *विद्या का अर्जन अर्थात् ज्ञान का अर्जन करते रहना* ✣ *सत्य आचरण करना तथा* ✣ *कभी भी किसी परिस्थिति में क्रोध न करना।*

विशाल और व्यापक दृष्टि वाले ऋषियों ने मानव अन्तःकरण की रचना का गहरायी से अध्ययन किया, तत्पश्चात् ईश्वर प्राप्ति हेतु निम्नांकित पाँच अन्य मार्गों की खोज भी की, जैसे - भावना प्रधान पुरुषों, विशेषकर महिलाओं के हितार्थ ***'भक्ति-मार्ग'***, बुद्धि प्रधान साधकों के लिए ***'ज्ञान-विज्ञान-योग'***, अति अहंकारी व्यक्तियों के लिए ***'सांख्य-योग'*** और सभी कोटि के, विशेषकर क्षीणप्राण साधकों के लिए पातञ्जलि द्वारा वर्णित ***'अष्टांग-योग'*** तकनीकों का आविष्कार किया। देहासक्त व्यक्तियों को भी ईश्वर तक पहुँचाने हेतु ***'तन्त्र योग'*** के मार्ग की खोज की गयी। अर्जुन की भाँति अति कर्मशील एवम् महत्वाकांक्षी साधकों अर्थात् चित्त प्रधान व्यक्तियों के लिए निष्काम कर्मयोग की तकनीक अधिक उपयुक्त है। ये सभी मार्ग सार्वभौमिक हैं। ***उपरोक्त तकनीकों के आविष्कार से यह स्पष्ट है, कि ऋषियों ने ये सभी मार्गों*** [b] ***का विधान समाज में उपलब्ध विभिन्न रुचियों वाले मानवों को ध्यान में रख कर किया था।*** उपरोक्त छह मुख्य सम्प्रदायों में

---

a *मनुस्मृति-6/92*

b There are several Schools or 'Paths' of Yoga involving some basic Physical training and various mental disciplines designed for people of different types and at different spiritual levels.
(Page-102 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)

किसी भी एक मार्ग पर चलकर ईश्वर प्राप्ति सम्भव है, परन्तु इन सम्प्रदायों में अपने सम्प्रदाय के प्रति अति लगाव के कारण अहंकार, कट्टरता तथा वैर भाव न उत्पन्न हो इसलिए ***'सर्वमत समभाव'*** (Secularism) का श्रेष्ठ विचार ऋषियों ने आविष्कृत किया था, ताकि उनके अनुयायी आपस में प्रेम भाव बनाए रखें। ***इस 'सर्वमत समभाव' विचार का अनुपालन द्वापर युग तक ऋषि आश्रमों में स्थापित सर्वोच्च सम्प्रभुता सम्पन्न समितियों*** [a] ***द्वारा कराया जाता था, जिसके गठन की आज भी परम आवश्यकता है।***

प्राकृतिक सिद्धान्तों की खोज :- सम्पूर्ण प्राणीमात्र प्रकृति के अंग हैं। पूरी सृष्टि में मानव ही ऐसा प्राणी है, जिसने प्रकृति का गहरायी से अध्ययन किया और प्रकृति किन सिद्धान्तों पर कार्य करती है, उन्हें ढूँढ़ निकाला। परमात्मा से मिलने के उपरोक्त छह मार्गों का निम्नांकित प्राकृतिक सिद्धान्तों से गहरा सम्बन्ध है।

1. गति/चक्र/परिवर्तनशीलता एवम् पुनर्जन्म के सिद्धान्त :- श्रीमद्भगवद् गीता [b] (3/16 एवम् 9/10) में ***'चक्र के सिद्धान्त'*** के सम्बन्ध में संकेत किया गया है। इन श्लोकों का सूक्ष्म भाव यह है, कि सृष्टि का हर अणु अपने उद्गम स्थल की ओर जाने के लिए प्रवृत्त है, अर्थात् सृष्टि में सर्वत्र गतिशीलता है तथा हर वस्तु निरन्तर एक चक्र (Cycle) में भी घूम रही है। इसी प्रकार से गीता के (9/7, 9/8 एवम् 9/10) श्लोकों [b] से यह भाव भी निकलता है, कि सृष्टि की रचना परमात्मा की अध्यक्षता में प्रकृति द्वारा कर्मों के अनुसार हर कल्प के प्रारम्भ

जीवन-मृत्यु-जीवन चक्र

चित्र : 2.02

---

a इस विषय की विस्तृत जानकारी हेतु पुस्तक के भाग-3 में *'वैदिक शासन व्यवस्था-ऋषि तन्त्र'* नामक लेख संलग्न है ।

b ***एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। अधायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।*** *(गीता-3/16)*
अर्थ :- ***हे पार्थ ! जो पुरुष इस लोक में यज्ञ निष्काम भाव से चलाये हुए सृष्टिचक्र के अनुसार नहीं बर्तता अर्थात् जो दान आदि कर्मों को चक्राकार गति से आगे-आगे नहीं देता, वह स्व की इन्द्रियों के सुख को भोगने वाला पाप-आयु पुरुष व्यर्थ ही जीता है।***
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्। कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।। *(गीता-9/7)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ ।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।। *(गीता-9/8)*
अर्थ :- अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बारम्बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ।
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।। *(गीता-9/10)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से प्रकृति चराचर सहित सर्व जगत को रचती है और ***इस प्रकार से यह संसार चक्र घूम रहा है।***

में बारम्बार की जाती है और यह संसार निरन्तर **जीवन-मृत्यु-पुनः** जीवन चक्र में अबाध गति से घूमता रहता है, अर्थात् पूरी सृष्टि चक्राकार गति के शाश्वत नियम का निष्ठापूर्वक अनुपालन करती है। इस प्रकार सर्वत्र निरन्तर परिवर्तन हो रहा है, जैसे - आकाशगंगाएं दौड़ रही हैं, सूर्य, पृथ्वी, ग्रह, तारे-सितारे सभी गतिशील हैं तथा हर वस्तु अपनी धुरी पर घूमने के अतिरिक्त किसी न किसी के चारों ओर भी घूम रही है। ***चन्द्रमा*** - पृथ्वी का, ***पृथ्वी एवम् ग्रह*** - सूर्य का, ***सूर्य*** - आकाशगंगा का निरन्तर चक्कर लगा रहे हैं। सृष्टि में आज तक ज्ञात लगभग दो सौ अरब आकाशगंगाएं हैं। ये सभी आकाशगंगाएं किसी अव्यक्त केन्द्र (भगवान श्रीकृष्ण) की परिक्रमा कर रही हैं। सूक्ष्म जगत में देखें, तो परमाणु के भीतर एलेक्ट्रॉन (Electron), नाभि (Nucleus) के चारों ओर घूम रहा है। ग्लेशियर से निकलकर नदियाँ समुद्र की ओर दौड़ती हैं। जल पुनः वर्षा द्वारा पर्वतों पर ग्लेसियर का रूप ले लेता है। ग्लेशियर मानों जीवात्मा की शारीरिक मृत्यु के पश्चात् सुप्तावस्था है, जहाँ से बर्फ के पिघलने पर नदी पुनः जन्म लेती है। ***पूरी सृष्टि में यही खेल निरन्तर चलता रहता है। जन्म-मृत्यु-संक्षिप्त सुप्तावस्था, पुनः जन्म इत्यादि।*** यह नियम आकाशगंगाओं से लेकर अणु-परमाणुओं तक सब पर लागू है। वृक्ष से बीज, बीज से वृक्ष बनते रहते हैं। रात-दिन, फिर रात, ऋतु-चक्र, ऑक्सीजन (Oxygen), नाइट्रोजन (Nitrogen), कार्बन (Carbon) चक्र निरन्तर चल रहे हैं, अतएव ***'जन्म-मृत्यु-फिर जन्म', यह जीवन निरन्तर प्रवाहमान है। जीवन कभी ठहरता नहीं है। इसी का नाम है 'पुनर्जन्म का सिद्धान्त'।*** स्पष्ट है, कि ***'पुनर्जन्म'*** का सिद्धान्त ***'गति के सिद्धान्त'*** पर आधारित है, अतएव गति के सिद्धान्त की भाँति ही यह भी एक प्राकृतिक सिद्धान्त है तथा शाश्वत सत्य भी है।

क्योंकि प्रकृति में सर्वत्र देने (दानशीलता) की प्रवृत्ति निहित है, अतएव दान देने की भारतीय प्रक्रिया इस प्रकार से बनायी गयी है, ताकि जिसको भी दान मिले वह व्यक्ति अपनी सामान्य एवम् सात्विक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेने के पश्चात् यथाशीघ्र शेष धन को अगले पात्र व्यक्ति को दे दे और यह व्यक्ति फिर अगले पात्र को दे दे। शास्त्र की आज्ञा है, कि कोई भी व्यक्ति धन का परिग्रह (संचय) न करे, अपितु आगे-आगे देता रहे।

रामजन्म के अवसर पर राजा दशरथ ने जो दान दिया, उस दान को लोगों ने किस प्रकार आगे बाँट दिया, यह बात रामचरितमानस की निम्न चौपाई में दर्शायी गयी है -

चौ0 - ***सर्वस दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहिं ताहू*** [a] ।।

अर्थ :- राजा दशरथ ने (राम जन्म के उत्सव पर) अनेक प्रकार का दान सभी को दिया, परन्तु जिसको भी दान मिला उसने उस दान को आगे दूसरों को भी दिया।

इस प्रकार इस दान व्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन तथा चक्राकार गति का भाव पूरी तरह से समाहित है। इस दृष्टि से गहरायी में जाने से ही हम परिवर्तन, चक्राकार गति तथा जन्म-मृत्यु के शाश्वत सिद्धान्तों की समझ को आत्मसात कर सकेंगे। इस ***'चक्र के सिद्धान्त'*** का जो अपने जीवन में अनुपालन करता है, सही अर्थों में वही व्यक्ति ईश्वरीय

a *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 193-194 के मध्य*

विधान को पालन करने वाला है, क्योंकि यह प्रकृति का शाश्वत नियम है, अतएव त्रिकाल सत्य है तथा अन्तिम सत्य भी है।

प्राकृतिक सिद्धान्तों से धर्म के लक्षणों का किस प्रकार विकास हुआ है, इस विषय पर छटें सत्र में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

1(a)* पुनर्जन्म पर खोज :-** वर्तमान काल में अनेक वैज्ञानिक पुनर्जन्म के सम्बन्ध में खोज करने में कार्यरत हैं, यद्यपि समाज में अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं, जिन व्यक्तियों को अपने पूर्व जन्म की स्मृति बनी हुई है और उन व्यक्तियों द्वारा दिए गये वक्तव्यों की जब छानबीन की गयी, तो उनकी पुष्टि भी हुई है। साधारणतया ऐसी घटनाओं को संयोग मात्र कहकर भुला दिया जाता है और उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया जाता। बहुधा किसी दुर्घटना जैसे अचानक पानी में डूबकर अथवा जल कर मर जाने पर व सड़क दुर्घटना से व किसी के द्वारा अचानक हत्या कर दिए जाने पर मृत जीवात्माओं को अपनी पूर्व घटनाएं अगले जन्म में भी स्मरण रह जाती हैं। ऐसी ही एक ताज़ी घटना ***डॉ. स्वर्णलता नामक महिला की है, जो आजकल भोपाल (म.प्र.) में कार्यरत हैं। कहते हैं, कि वह पचपन वर्ष की हैं। उन्होंने अपने पिछले दो जन्मों का इतिहास बतलाया है, जिसे छानबीन करने पर सही पाया गया है। प्रथम जन्म में वह मध्य प्रदेश के ही कटनी शहर में बिंदिया नाम की महिला थीं। उनके दो बेटे थे। एक मर गया तथा दूसरा अभी तिहत्तर वर्ष का है। इसके पश्चात् वह सिल्हट नामक शहर में जो अब बंगलादेश में स्थित है (15 अगस्त 1947 से पूर्व यह शहर भारत का ही भाग था) कमलेश नाम से पैदा हुई थी। वहाँ पर वह नौ वर्ष की आयु में सड़क दुर्घटना में मारी गयी थीं [a]।

कुछ समय पूर्व प्रकाश में आयी निम्नांकित विचित्र लगने वाली परन्तु सत्य घटनाओं से पुनर्जन्म के सिद्धान्त को बल मिलता है।

1. नौ माह का बालक पानी में कुशलतापूर्वक तैर सकता है।

2. छह वर्ष की उम्र का एक बालक अच्छा तबला वादक है।

3. आठ माह की उम्र से शुरू की गयी अपनी चित्रकला से नौएडा (उत्तर प्रदेश) निवासी नन्ही सी ईशवा ने भारत के राष्ट्रपति तक को अभिभूत कर दिया। उसके द्वारा बनायी गयी पेन्टिंग्स की आज तक तीन प्रदर्शनियाँ लगायी जा चुकी हैं। 10 जुलाई 2004 को इस बच्ची का तीसरा जन्मदिन मनाया गया [b]।

पूर्व जन्म में किए गये सतत् अभ्यास से मृत्यु के समय चित्तपटल पर उभरा गम्भीर संस्कार ही इस प्रकार की विचित्र घटनाओं का कारक हो सकता है।

उपरोक्त तीन घटनाओं के अतिरिक्त विश्व में समय-समय पर अनेकानेक ऐसी घटनाएं होती रहती है, जिससे जीवात्माओं के ***'पुनर्जन्म'*** के सिद्धान्त की पुष्टि की जा सकती है। इन घटनाओं को मात्र संयोग नहीं माना जा सकता।

---

a यह समाचार टी.वी. के *'ज़ी-न्यूज'* चैनल पर मई 2003 के अन्तिम सप्ताह में प्रसारित किया गया था।

b संदर्भ : दैनिक जागरण 17 जुलाई 2004 (अंक दिल्ली जागरण, पृष्ठ-2)

डाक्टरी हिसाब से मर चुके व्यक्तियों को पुनः जीवित हो उठने की घटनाओं का मामला भी बहुधा सुनने में आता है। इस सम्बन्ध में कुछ समय पूर्व ***डॉ. रेमण्ड मूडी*** ने अपनी पुस्तक **"लाइफ ऑफटर लाइफ"** में उन सौ व्यक्तियों के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी थी, जो डाक्टरी हिसाब से मर चुके थे, परन्तु पुनः जीवित हो गये। ये व्यक्ति जिन पर खोज की गयी थी, वे सभी विभिन्न कार्यक्षेत्रों, जैसे - डॉक्टर, इन्जीनियर, नर्स, व्यापारी, श्रमिक वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने अपने-अपने वक्तव्यों में मृत्यु के पश्चात् तरह-तरह के अनुभवों की चर्चा की है, जैसे - *(i)* जीवात्मा को शरीर से बाहर आ जाने पर हल्केपन का अनुभव होना। *(ii)* रोते-बिलखते परिजनों का जीवात्मा द्वारा सान्त्वना देने पर भी परिजनों को उसके द्वारा बोले गये शब्दों का तथा छुए जाने का अनुभव न हो पाना। *(iii)* मृत्यु के पश्चात् किसी अज्ञातशक्ति द्वारा आकृष्ट किए जाने पर एक काली सुरंग से होकर गुजरना, तत्पश्चात् एक प्रकाश लोक का दिखलायी पड़ना। *(iv)* प्रकाश लोक में पूर्वपरिचित मृत परिजनों से भेंट होना। *(v)* किसी शक्ति द्वारा जीवात्मा के रिकॉर्ड का अवलोकन करके उसे वापिस जाने का आदेश देना। *(vi)* वापिस आने पर पुनः शरीर में प्रवेश करना और घटित बातों के उल्लेख करने पर सभी के द्वारा आश्चर्य व्यक्त करना इत्यादि।

1(b) **आकाशगंगा** :- सौर परिवार अपनी आकाशगंगा का सदस्य है। इस आकाशगंगा के बाहरी सर्पिल घेरों में एक खरब से भी अधिक सूर्य हैं। ये सारे सूर्य एलेक्ट्रॉन तारा समूह की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं तथा आकाशगंगा के केन्द्र के चारों ओर निरन्तर चक्कर लगाते रहते है। ***हमारा सूर्य*** आकाशगंगा का 22½ करोड़ वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है। इसी सत्र के चित्र संख्या-2.03 का अवलोकन करें जिसमें हमारे सूर्य की स्थिति को तीर के निशान से दर्शाया गया है। यह आकाशगंगा के केन्द्र से 32000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। आकाशगंगा का अन्दर का घेरा प्रोटॉन तारा समूह की श्रेणी में गिना जाता है। इस घेरे में अति गर्म तारे हैं। इनका रंग नीला है। इसे पौराणिक भाषा में ***'विष्णु-लोक'*** कहा जा सकता है। इन प्रोटॉन तारा समूह की पृष्ठभूमि में छुपा अव्यक्त चेतन विष्णु-बल धन (+) चार्ज से आवेशित है, अतः उनमें मानव चित्त की भाँति ही सूचनाओं को रिकॉर्ड करने की क्षमता है, अर्थात् विष्णु-बल अति शक्तिशाली कम्प्यूटर (Super Computer) का कार्य करता है। यह बल पृथ्वी पर रहने वाले सभी मानवों के चित्तों का नियमन करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण मानवों के कर्मों का फलाफल इन्हीं तारों में निहित धन (+) आवेश की सहायता से गणित किया जाता लगता है। केन्द्र में स्थित न्यूट्रॉन तारों से निर्मित स्तम्भ पौराणिक भाषा में ***'शिव लोक'*** कहा जा सकता है। इन तारों का रंग श्वेत है।

1(c) **आत्मा एवम् जीवात्मा की रचना** :- श्रीमद्भगवद् गीता में ***'आत्मा'*** की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को बतलाते हैं, कि ***'आत्मा'*** अजन्मा, सर्वव्यापक, अविनाशी, नित्य, अमर, शाश्वत, अनादि और अव्यय है। इसको काटा जाना, जलाया जाना, गीला कर सकना, सुखाया जाना आदि सम्भव नहीं है। यह अचल है, स्थिर है। यह चिन्तन का विषय नहीं है, यह दिखलायी भी नहीं देता, निर्विकार

है, आदि आदि [a]।

जीवात्मा के सृजन के विषय में भगवान बतलाते हैं, कि जीवात्मा में मेरी चैतन्य शक्ति रूपी ***'परा प्रकृति'*** विद्यमान रहती है, ***जबकि 'पृथ्वी', 'जल', 'तेज', 'वायु' एवम् 'आकाश' (पंचमहाभूत), मन, बुद्धि तथा अहंकार, ये आठ प्रकार की भेदों वाली मेरी 'अपरा (जड़) प्रकृति' है [b]। चुम्बकीय विद्युत तरंगों के घनीभूत होने से जड़ पदार्थों***

---

a ***अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।*** *(गीता-2/17)*
अर्थ :- नाशरहित तो उसको जान, कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, क्योंकि इस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।। *(गीता-2/18)*
अर्थ :- इस नाशरहित अप्रमेय नित्यस्वरूप आत्मा के यह सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं, इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन ! तूं युद्ध कर ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। *(गीता-2/19)*
अर्थ :- जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं, क्योंकि यह आत्मा न मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। *(गीता-2/20)*
अर्थ :- यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है; शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता ।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्। कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।। *(गीता-2/21)*
अर्थ :- हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। *(गीता-2/23)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते और इसको आग नहीं जला सकती तथा इसको जल नहीं गीला कर सकता और वायु नहीं सुखा सकता ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। *(गीता-2/24)*
अर्थ :- क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।। *(गीता-2/25)*
अर्थ :- यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों का अविषय और यह आत्मा अचिन्त्य अर्थात् मन का अविषय और यह आत्मा विकाररहित अर्थात् न बदलने वाला कहा जाता है, इससे हे अर्जुन ! इस आत्मा को ऐसा जानकर तूं शोक करने को योग्य नहीं है, अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है।

b ***भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।*** *(गीता-7/4)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार भी ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। *(गीता-7/5)*
अर्थ :- यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो **'अपरा'** है अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को मेरी जीव रूपा **'परा'** अर्थात् चेतन प्रकृति जान, कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है ।

KUNDALINI & OUR GALAXY

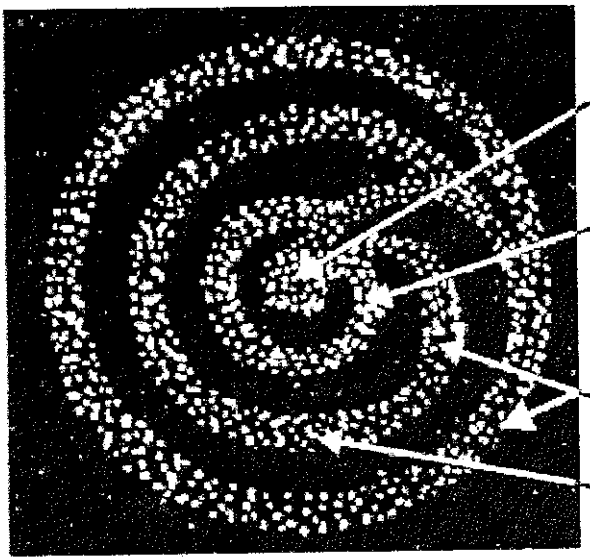

"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" सूत्र के अनुसार परमाणु मानव एवम् आकाशगंगा तीनों के व्यवहार में समानान्तरता है।

कुंडलिनी=जीवात्मा=सूक्ष्म शरीर=अन्तःकरण

Length of Milky Way = 1 Lakh Light Years
Distance of our Sun From Centre = 32,000 Light Years
One Light Years=9.46×10^{12} Km.

चित्र : 2.03

(अपरा) की उत्पत्ति होती है। 'परा प्रकृति' अर्थात् ***'चैतन्य शक्ति'*** द्वारा इस जगत को धारण किया जाता है, इस प्रकार ***'परा'*** (चैतन्य) एवम् ***'अपरा'*** (जड़) प्रकृति के संयोग से सम्पूर्ण प्राणियों अर्थात् अनन्त जीवात्माओं की उत्पत्ति होती है। यह जीवात्मा पुराने एवम् जर्ज़र शरीरों को त्याग कर, नवीन वस्त्रों [a] की भाँति नए-नए शरीरों को धारण करने

---

a *वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।। (गीता-2/22)*
अर्थ :- जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

वाला है और सम्पूर्ण जगत का प्रभव (उत्पत्ति) तथा प्रलय [a] (विनाश) का कारण मैं हूँ तथा ***यह सम्पूर्ण जगत, मणियों [b] की भाँति मुझ परमात्मा रूपी धागे में पिरोया हुआ है।***

1(d)* जीवात्मा [c] का वैज्ञानिक स्वरूप - एक परिकल्पना** :- जीवात्मा अर्थात् कुंडलिनी की आकृति ***'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' सिद्धान्त के अनुसार आकाशगंगा की आकृति जैसी ही साढ़े तीन सर्पिल वृत्तों (घेरों) से निर्मित है। योग विद्या के अनुसार कुंडलिनी (जीवात्मा) का निवास मूलाधार चक्र पर माना गया है। कुंडलिनी के बाहरी वृत्त एलेक्ट्रॉन कणों (बीटा तरंगों) से निर्मित होने के कारण ऋण (–) विद्युत से आवेशित हैं, जबकि इसका केन्द्र सघन न्यूट्रॉन कणों से निर्मित है, अतः इस भाग में सम (±) चार्ज है, यह केन्द्रीय पिण्ड जीवात्मा के अहम् भाव को संजोए रखता है। अहम् भाव का अर्थ होता है, कि जीवात्मा स्व (अपनी) स्थिति को विश्वात्मा (परमात्मा) से भिन्न मानती है। मूलतः इस भाव में रहने के कारण अन्तःकरण में अनेकानेक इच्छाओं का आविर्भाव होता है, परिणामस्वरूप जीवात्मा को बारम्बार जन्म एवम् मृत्यु के चक्र में घूमना पड़ता है। कुंडलिनी के अन्तर प्रदेश में स्थित एक वृत्त जो प्रोटॉन कणों से बना है, धन (+) विद्युत से आवेशित है। इस वृत्त में परमात्मा की ***'परा'*** (चेतन) शक्ति का निवास है, जिससे कुंडलिनी (सूक्ष्म शरीर) जीवन्त है तथा इस में सृजनशीलता का गुण विद्यमान है। उपरोक्त तीनों प्रकार के कण तरंग रूप में भी व्यवहार करते हैं, अतएव इनको गामा (सत), बीटा (रज) एवम् आल्फा (तम) नामों से भी कहा गया है। इस अन्तरवृत्त (प्रोटॉन कणों) में पूर्व जन्मों के अनन्त-अनन्त संस्कार भी रिकार्ड रहते हैं। इन अनन्त संस्कारों में से ***'कर्म के सिद्धान्त'*** के अनुसार कुछ भाग वर्तमान जन्म में भोगने के लिए निश्चित हो जाता है, जिसे प्रारब्ध कहा जाता है। जीवात्मा की आल्फा प्लेट पर लिखित यह भाग पूर्व जन्मों के कर्मों का लेखा-जोखा होता है। इसके आधार पर वर्तमान जन्म की घटनाओं का मार्ग प्रशस्त होता है तथा वीडियो फिल्म की भाँति पूर्व जन्म में किए गये कर्मों से उत्पन्न कर्मफलों का विश्वपटल पर प्रक्षेपण होता है। इन प्रारब्ध कर्मों की एक विशिष्ट प्रकार की प्रवृत्ति (Tendency) अल्फा प्लेट (प्रोटॉन कणों) पर लिखी होती है। यह प्रवृत्ति मानव को वर्तमान जीवन में प्राप्त मन-बुद्धि को विशिष्ट प्रेरणा देकर स्व के अनुरूप कार्य करवाती है। यही कारण है, कि एक ही माता-पिता से उत्पन्न दो सन्तानों में बहुत बार एक सात्विक प्रवृत्ति की तो दूसरी गम्भीर अपराधी प्रवृत्ति की देखी जाती है। इस प्रकार की घटनाओं से ***'पुनर्जन्म'*** तथा ***'कर्म'*** के सिद्धान्तों को बल मिलता है, इस विषय पर विज्ञान द्वारा शोध किया जाना चाहिए।

जीवात्मा, कुंडलिनी, सूक्ष्म शरीर तथा अन्तःकरण (भीतर की मशीन) ये चारों नाम एक ही अर्थ वाले हैं।

---

a ***एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।*** *(गीता-7/6)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! तूं ऐसा समझ, कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पत्ति वाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत का उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत का मूल कारण हूँ ।

b ***मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।*** *(गीता-7/7)*
अर्थ :- हे धनंजय ! मेरे सिवाय किञ्चिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुंथा हुआ है ।

c जीवात्मा, सूक्ष्म शरीर, कुंडलिनी एवम् अन्तःकरण की रचना चित्र संख्या-2.03 पर दर्शायी गयी है ।

परिभाषाएं :-

(i)* जीवात्मा :-** तीन प्रकार के कणों (एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवम् न्यूट्रॉन) अथवा तीन प्रकार की तरंगों क्रमशः बीटा (रज), आल्फा (तम) एवम् गामा (सत) से निर्मित सूक्ष्म शरीर ही जीवात्मा है, जिसे परमात्मा की ***'परा' शक्ति जीवन्तता प्रदान करती है। यही जीवात्मा अपने कर्मों के आधार पर अनेक शरीर धारण करती है।

***(ii)* सूक्ष्म शरीर :-** जिस प्रकार टी०वी० स्टेशन से आती तथा टी०वी० में प्रवेश करती हुई चुम्बकीय विद्युत तरंगें दिखलायी नहीं पड़तीं, उसी प्रकार से उपरोक्त तीन तरंगों से निर्मित सूक्ष्म शरीर माँ के गर्भ में प्रवेश करते हुए तथा मृत्यु के समय शरीर छोड़ कर जाते हुए दिखलायी नहीं पड़ता।

(iii)* कुंडलनी :-** योग विद्या के अनुसार साढ़े तीन वृत्तों (घेरों) से बनी आकाशगंगा की आकृति जैसी कुंडली रूप होने से ***'कुंडलनी' नाम से जानी जाती है। इसका निवास स्थान 'मूलाधार चक्र' पर माना गया है। यह आकाशगंगा की भाँति ही एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवम् न्यूट्रॉन कणों से मिलकर बनी है।

***(iv)* अन्तःकरण :-** सूक्ष्म शरीर को ही अन्तः (अन्दर की) करण (मशीन) कहा गया है, क्योंकि अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त एवम् अहंकार भावना से पूरित होने के कारण मानव के भौतिक शरीर को यही चलाता है।

2. अनुलोम विलोम अथवा पूरकता का सिद्धान्त (Law of Opposites or Complementarities) :- प्रकृति में चक्राकार गति के अतिरिक्त सर्वत्र विपरीत बातें, परिस्थितियाँ, वस्तुएं एवम् गुण देखने में आते हैं, जैसे समुद्र की सतह पर उठती उत्ताल तरंगों के साथ ही जल राशि की उतनी ही गहरायी देखने में आती है। कुछ अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत हैं-

अनुलोम		विलोम	अनुलोम		विलोम	अनुलोम		विलोम
1. रात	-	दिन	7. सुर	-	असुर	13. सज्जन	-	दुर्जन
2. स्त्री	-	पुरुष	8. उन्नति	-	अवनति	14. गुण	-	दोष
3. अच्छा	-	बुरा	9. संत	-	असंत	15. जड़	-	चेतन
4. प्रकाश	-	अंधकार	10. निर्गुण	-	सगुण	16. धनी	-	निर्धन
5. लाभ	-	हानि	11. विष	-	अमृत	17. राजा	-	रंक
6. जीवन	-	मृत्यु	12. माया	-	ब्रह्म	18. आकाश	-	पाताल

'रामचरितमानस' में साहित्यिक ढंग से संत तुलसीदास जी ने विपरीतता पूर्ण बातों की सुन्दर चर्चा निम्न प्रकार से की है -

चौ० - ***उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं*** [a] ।।

अर्थ :- इस विश्व में अनेक विपरीत बातें देखने में आती हैं, जैसे कि जल में कमल और जौंक (एक कीड़ा जो खून पी जाता है) दोनों साथ ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु उनके गुण एकदम विपरीत देखने में आते हैं। कमल सुन्दर, कोमल व नेत्रों को सुखदायक लगता है, जबकि जौंक मानव का खून पी जाती है।

---

a *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 4-5 के मध्य*

चौ0 - ***दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सुजीवन माहुर मीचू*** [a] ।।

अर्थ :- राक्षस, देवता, ऊँच एवम् नीच लोग, अमृत, विष, जीवन एवम् मृत्यु ये सभी ब्रह्मा की सृष्टि में हैं।

दो0 - ***जड़ चेतन गुन दोषमय विस्व कीन्ह करतार।***
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार [b] ।।

अर्थ :- विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण तथा दोष से भरपूर रचा है। किन्तु संत रूपी हंस, दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं।

ऐसी मान्यता है, कि हंस पक्षी पानी मिले दूध में दूध-दूध पी लेता है तथा पानी को छोड़ देता है, यह इस पक्षी की विशेषता बतलायी गयी है। *(यह प्रतीकात्मक है)*

विज्ञान के अनुसार हर कण का एक प्रतिकण होना अवश्यम्भावी है। धन (+) चार्ज का विपरीत ऋण (–) चार्ज भी प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त है। चुम्बक को यदि किसी लोहे के टुकड़े के पास ले जाया जाये और यदि चुम्बक के उत्तरी ध्रुव से उसे छुआ जाये, तो उस लोहे के टुकड़े में विपरीत ध्रुव अर्थात् दक्षिणी ध्रुव उत्पन्न हो जाता है। इन विपरीतताओं में पूरकता (Complementarity) का भाव निहित है, इसी कारण सृष्टि का क्रम निरन्तर गतिमान रहता है तथा ***यह प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त भी है।***

उपरोक्त उद्धरणों से यह तय है, कि अनुलोम-विलोम का सिद्धान्त प्रकृति का अनिवार्य अंग है और प्रत्येक मानव को इस अनिवार्यता को सहन करना होगा तभी वह शिवमय बनकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

3.(a) कर्म का सिद्धान्त :- आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजे गये डी०एन०ए० (डि-ऑक्सी-राइबो-न्यूक्लिक-एसिड) की संरचना और उसकी कार्य प्रणाली की सहायता से कर्म के सिद्धान्त को निम्न पंक्तियों में समझने का प्रयास किया जा रहा है। यह सीढ़ीनुमा डी.एन.ए. हर कोशिका के न्यूक्लियस में पाया जाता है तथा अपने अन्दर *'जीन्स'* अर्थात् जैनेटिक मैटीरियल को सहेज कर रखता है। बाह्य जगत से प्राप्त सारी सूचनाओं को यह *'डी.एन.ए.'* चार प्रकार के रसायनों अर्थात् एडीनाइन (Adenine), गुनाइन (Guanine), थाइमाइन (Thymine) और साइटोसिन (Cytosine) की सहायता से एक विशिष्ट प्रकार से रिकॉर्ड कर लेता है, जिसे *'जीन्स'* अर्थात् सूचनाओं की पुस्तक कहा जाता है। हर कोशिका के न्यूक्लियस में लाखों *'जीन्स'* अर्थात् सूचनाओं का पिटारा होता है। यह डी.एन.ए. एक इंच के एक अरबवें भाग जितना सूक्ष्म होता है और यदि इसको पूरा खोल दिया जाये, तो इसकी लम्बाई छह फुट तक फैल जायेगी। *'डी.एन.ए.' सम्बन्धी तीन चित्र संलग्न हैं।* पहला चित्र-2.04 जीवित कोशिका के मुख्य-मुख्य भागों को

कोशिका में डी.एन.ए.

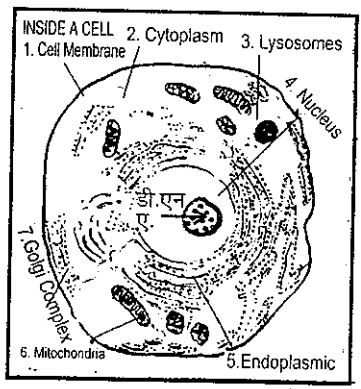

चित्र : 2.04

a&b *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 5-6 के मध्य एवम् दो. 6*

को तथा इसमें 'डी.एन.ए.' की स्थिति को दर्शाता है। चित्र-2.05 अपने आप में एक अति सुन्दर ईश्वरीय कलाकृति लगती है तथा तीसरा चित्र-2.06 है, जिसमें सीढ़ीनुमा डी.एन.ए. को खोल कर बतलाया गया है। इसमें उपरोक्त चार प्रकार के रसायनों द्वारा सूचनाओं को संग्रह करने का क्रम दर्शाया गया है, जिनके जुड़ने से सीढ़ी जैसी आकृति बनती है।

डी.एन.ए. का बाह्य चित्र

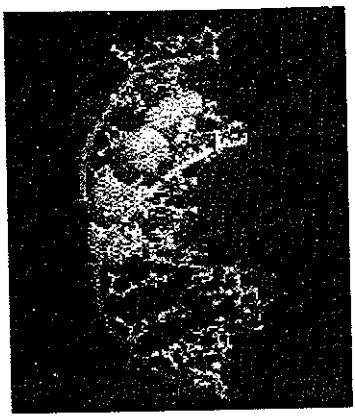

चित्र : 2.05

डी.एन.ए. का अन्तरंग चित्र

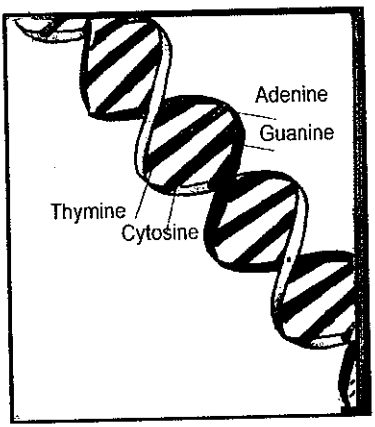

चित्र : 2.06

3(b) **'संस्कार' अर्थात् सम्वेदनाओं का रिकार्ड :-** उपरोक्त चार प्रकार के रसायन (Adenine, Guanine, Thymine तथा Cytosine) एक विशेष व्यवस्था के अन्तर्गत सीढ़ीनुमा डी0एन0ए0 पर विशिष्ट शैली में बाह्य जगत से प्राप्त सम्वेदनाओं (Impulses) को रिकार्ड कर लेते हैं। (बाह्य जगत से प्राप्त हर सूचना = Information एक विद्युत सम्वेदना में बदल जाती है और यही सम्वेदना एक विशिष्ट शैली में डी.एन.ए. पर लिख जाती हैं) बाह्य जगत से प्राप्त सूचनाएं हमारे पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (नाक, कान, आँख, जिह्वा और त्वचा) एवम् मन तथा बुद्धि के माध्यम से अनवरत रूप से प्राप्त होती रहती हैं। नाक से गंध, कान से ध्वनि, आँख से दृश्य, जीभ से स्वाद तथा त्वचा से स्पर्श की सम्वेदनाएं कोशिकाओं तक पहुँचती हैं। भारतीयों ने इन पाँचों प्रकार की सम्वेदनाओं के रिकार्ड को मिलाजुला नाम ***'संस्कार'*** दिया है। भारतीयों की एक और विशेष खोज यह भी है, कि यदि किसी घटना से मन जुड़ा न हो, तो वह संस्कार रिकार्ड ही नहीं होता। यदि होता भी है, तो जीवन में उसका प्रतिफल उत्पन्न नहीं होता। इसीलिए सम्पूर्ण गीता, जो भवसागर रूपी रोग की महौषधि है, यह सिखलाती है, कि मनुष्य यदि संसार के किसी भी कर्म से राग अथवा द्वेष न रखे तो जन्म-मरण के चक्र से छूट सकता है अर्थात् जहाँ पर राग या द्वेष है, वहीं पर कुछ पाने की इच्छा है और कुछ पाने की इच्छा ही जन्म-मरण के चक्र का कारण बनता है, अतएव यदि मनुष्य पूरा जीवन निष्काम कर्म करता रहे, तो जो भी सूचना रिकार्ड होगी, व्यक्ति की उस घटना के प्रति आसक्ति न होने के कारण कर्मफल उत्पन्न नहीं करेगी।

Each unit of DNA has a structure like a twisted ladder which is called a double helix. The rungs of the ladder are made of various sub-units called adenine, guanine, thymine and cytosine, arranged in pairs. The order of the rungs forms a code - a gene. ⟶

3(c) भावी जीवन की प्रक्रिया :- भारतीय शास्त्रों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन के पश्चात् भी जीवन है और पूर्व अर्जित सूचनाओं के आधार पर पुनर्जन्म भी होता है। अतएव सूचनाओं का क्रम डी.एन.ए. से आगे भी चलते रहना स्वाभाविक है। कोशिका एवम् डी.एन.ए. तो मृत्यु के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं, तो फिर पूर्व सूचनाएं अवश्य किसी न किसी रूप में भावी जीवन में जाती हैं अर्थात् आल्फा, बीटा एवम् गामा तरंगों से बने ***'सूक्ष्म शरीर'*** के माध्यम से ही वे भावी जीवन में पहुँचती हैं [a]। सूक्ष्म शरीर के प्रोटॉन कण, जो धन (+) विद्युत से आवेशित रहते हैं, जीवन भर की डी.एन.ए. में लिखित सूचनाओं को मृत्यु के पश्चात् अपने साथ ले जाते हैं और इस प्रकार भावी जीवन का खेल चलता रहता है। भावी जीवन की प्रक्रिया को श्रीमद्भगवद् गीता [b] में निम्न प्रकार से समझाया गया है -

"जिस प्रकार वायु गंध को अनेक स्थानों से एकत्र करके (तरंग रूप में) ले जाता है, उसी प्रकार से जीवात्मा पूर्व शरीर के मन व इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए गये संस्कारों को भावी योनि में एक विशिष्ट आवृत्ति (Frequency) के रूप में ले जाता है। चूँकि संस्कारों का संचय श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा आदि इन्द्रियों द्वारा भोगे गये विषयों से होता है, जिनका भोक्ता मन होता है, अतएव जीवात्मा किस प्रकार विषयों को भोगता है, वह कैसे भावी योनि में इन संस्कारों को ले जाता है आदि आदि, की गूढ़ जानकारी को ज्ञानी जन ही जान पाते हैं।"

जीवनकाल में संग्रह की गयी सूचनाओं की एकीकृत नियन्त्रण प्रणाली तरंगों के रूप में पश्चात् मस्तिष्क (Posterior Part of CEREBRUM) अर्थात् अवचेतन मन (Sub-Conscious Mind) में स्थित होती है, जो सभी सूचनाओं का समन्वय करके जीवन चक्र को आगे बढ़ाती है, जबकि पूर्व जन्म की सूचनाएं मूलाधार चक्र पर स्थित ***'कुंडलिनी'*** (सूक्ष्म शरीर) में लिखी रहती हैं, जो अवचेतन-मन (चित्त) को प्रभावित करती हैं और जीवन चक्र को लगातार मृत्यु पर्यन्त चलाती हैं। वस्तुतः अवचेतन मन एक ऐसा केन्द्र है, जहाँ पर वर्तमान जीवन में डी.एन.ए. पर रिकार्ड की गयी सभी सूचनाओं (संस्कारों) का समन्वित रिकार्ड स्वतः तैयार हो जाता है तथा इस रिकार्ड के आधार पर हमारी अन्तर-ग्रंथियाँ (Endocrine Glands) प्रभावित होती रहती हैं, जहाँ से अवचेतन मन से आने वाले स्नायु (Nerves) शरीर

---

a 'सूक्ष्म शरीर की संरचना' चित्र संख्या-2.03 पर है ।

b ***शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः। गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।*** *(गीता-15/8)*
अर्थ :- वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादि का स्वामी, जीवात्मा भी जिस पहिले शरीर को त्यागता है, उससे इन मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके, फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है ।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च। अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।। *(गीता-15/9)*
अर्थ :- उस शरीर में स्थित हुआ, यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है ।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् । विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। *(गीता-15/10)*
अर्थ :- शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को अथवा विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी, अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, ***केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्त्व से जानते हैं।***

में स्रवित होने वाले जीवन रसों (Hormones) का नियंत्रण करते हैं। मृत्यु के समय यह समन्वित रिकार्ड ***'कुंडलिनी'*** की आल्फा प्लेट पर स्थानान्तरित हो जाता है तथा यह सूक्ष्म शरीर (कुंडलिनी) इस जन्म में किए गये कर्मों से उत्पन्न संस्कारों को लेकर अनन्त की यात्रा पर अन्तरिक्ष में चला जाता है और इसी रिकार्ड के आधार पर ***'यमराज'*** के दरबार में जीवात्मा के भाग्य का निर्णय किया जाता है। ***(अनुच्छेद 3(a), 3(b) एवं 3(c) में लिखित विचार लेखक की अपनी परिकल्पना है)***

जिस प्रकार वर्तमान समय में वीडियो फिल्म[a] बनने की प्रक्रिया में पूरे नाटक के पात्रों के सम्वाद, नृत्य, हाव-भाव, गायन आदि उनके चित्रों सहित वीडियो की चुम्बकीय फिल्म पर रिकॉर्ड हो जाती है तथा उस सूक्ष्मीकृत फिल्म को बड़े पर्दे पर प्रक्षेपित करके पुनः देखा जा सकता है, उसी प्रकार मानव जीवन की हर घटना, जिसके साथ राग एवम् द्वेष के कारण मानव मन जुड़ा होता है, मानव के चित्तपटल पर रिकॉर्ड होती रहती है। मृत्यु के समय यह फिल्म कुंडलिनी की ***'तम'*** (Alpha) प्लेट पर सिमट जाती है। ***यह कुंडलिनी (सूक्ष्म शरीर) अपनी भावी योनि में इन संस्कारों (वीडियो फिल्म) को साथ ले जाती है तथा 'कर्म के सिद्धान्त' के आधार पर रिकार्ड की गयी घटनाओं की प्रतिक्रिया होती है तत्पश्चात् भावी जन्म में उसी क्रम में पूर्व जन्म की घटनाओं का उस जीवात्मा के जीवन में विश्वपटल पर प्रक्षेपण (Project) होता है। इस प्रकार प्रत्येक जीवात्मा अपने कर्मफलों को भोगने हेतु बारम्बार जन्म लेती है।*** पूर्व जन्म के कर्मों से उत्पन्न प्रतिक्रिया मानव के चित्त में नवीन जन्म के लिए बहुत कुछ प्रोग्रामित कम्प्यूटर डिस्क (Programmed Computer Disk) जैसा कार्य करती है जिसके फलस्वरूप मानव एक प्रोग्रामित रोबोत की भाँति कार्य करता है, क्योंकि मानव द्वारा निर्मित ***'रोबोत'*** में जैसी ***'कम्प्यूटर डिस्क'*** (Computer Disk) लगी होती है, वैसे ही ***'रोबोत'*** (Robot) कार्य करता है। रोबोत डाक बाँटेगा अथवा टाँका (Welding) लगाएगा या भजन गायेगा, यह उस कम्प्यूटर (Computer) में भरे गए कार्यक्रम (Programme) पर निर्भर करेगा, ***इसी प्रकार से मानव भी ईश्वर द्वारा निर्मित बहुत कुछ रोबोत (Robot) जैसा है। उदाहरणार्थ कोई डॉक्टर, कोई इंजीनियर तो कोई व्यापारी।*** परन्तु मानव पूर्ण रूप से प्रकृति के अधीन नहीं है। उसको परमात्मा ने विवेक बुद्धि दी हुई है। वह इसका प्रयोग करके शनैः-शनैः माया के बन्धन से मुक्त हो सकता है।

रोबोत

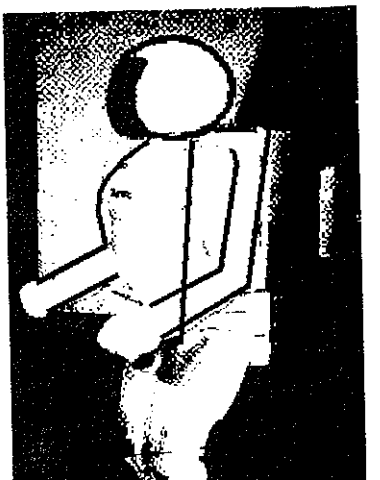

चित्र : 2.07

a वीडियो फिल्म में दृश्य (प्रकाश) एवम् श्रव्य (ध्वनि) दो सम्वेदनाओं को ही रिकार्ड किया जाता है, जबकि 'संस्कार' शब्द पाँच प्रकार (नेत्र, कान, नाक, जिह्वा तथा स्पर्श) से प्राप्त सम्वेदनाओं के रिकार्ड को कहा जाता है । यह तुलना मात्र सहजता से समझाने के लिए लिखी गयी है ।

वस्तुतः हमारे ***चित्त*** (Sub-conscious mind) में इकट्ठी की गयी जानकारियों (Informations) के अनुसार हम सब कार्य करते हैं। ये जानकारियाँ हम स्वतः इकट्ठी करते रहते हैं और फिर जीवन भर इन्हीं जानकारियों के आधार पर क्रियाशील रहते हैं। निम्न चित्र का अवलोकन करें।

मानव का जीवन चक्र–एक परिकल्पना

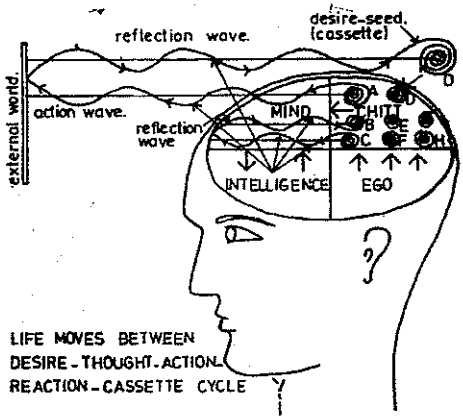

चित्र : 2.08

मान लीजिए, मकान बनाने की एक इच्छा 'A' चित्त में पहले से विद्यमान थी। यह इच्छा पैदा जब हुई, जबकि किसी अन्य का मकान देखा होगा। अब उसकी पूर्ति के लिए मानव क्रियाशील हो उठता है, तो वह व्यक्ति जब बाह्य जगत के सम्पर्क में आता है, तब मकान सम्बन्धी अनेक समस्याओं से जूझता है तथा अनेक लोगों के सम्पर्क में भी आता है। तब राग-द्वेष के कारण अनेक खट्टे-मीठे अनुभव अथवा घटनाएं एवम् सूचनाएं प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हो जाती हैं और वे अनेकानेक घटनाएं (सूचनाएं) पुनः चित्त में B, C, D, E, F, G और H स्मृतियों के रूप में एकत्रित हो जाती हैं। इसी प्रकार उन अनुभवों से पुनः अनेक नयी स्मृतियों का जन्म होता है और वे भी चित्त में संग्रहीत होती जाती हैं। बस, इसी प्रकार ***'जीवन-चक्र' 'इच्छा-संकल्प-क्रिया-प्रतिक्रिया (स्मृतियों)'*** के बीच प्रवाहमान रहता है। क्योंकि हर कम्प्यूटर (Computer) में निर्णय की चाबी (Result Key) होती है, अतएव वह समय-समय पर अपना परिणाम भी देता रहता है। सभी जीवों के कम्प्यूटर (Computer), आकाशगंगा के अति शक्तिशाली कम्प्यूटर (Super Computer) से अर्थात् विष्णु भगवान से जुड़े हुए रहते हैं। ***चित्त (Computer) में कर्म का बीज एक बार भी बोया गया, तो उसका परिणाम भोगे बिना मानव को छुटकारा नहीं मिल सकता, चाहे वह कर्म अच्छा हो या बुरा।***

जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न हो जाता है, उसमें फल लगता है। फल में बीज निहित रहता है, बीज से पुनः वृक्ष बन जाता है। इसी प्रकार मानव चित्त में इच्छाओं से उत्पन्न कर्मों का लेखा-जोखा स्मृतियों के रूप में लिख जाता है। मृत्यु काल में इस रिकार्ड फाइल का संक्षिप्त रूप (Capsule) तैयार हो जाता है तथा एक विशिष्ट फ्रीक्वैन्सी भी बन जाती है। यह संक्षिप्त कैप्सूल तथा फ्रीक्वैन्सी भावी जीवन का निर्माण तथा संचालन करते हैं। इनको क्रमशः प्रारब्ध तथा प्रवृत्ति के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार बीज में पूरा वृक्ष छिपा होता है उसी प्रकार

प्रारब्ध रूपी कर्मफल और प्रवृत्ति रूपी बीज भावी जीवन में घटने वाली सभी घटनाओं, जैसे- सुख-दुःख, आधि-व्याधि अर्थात् रोगबीज आदि को सूक्ष्म तरंगों के रूप में संजोए रखते हैं, जिन्हें भोगने हेतु जीव बारम्बार अनेक योनियों में जन्म लेता है। इस प्रकार चक्र के सिद्धान्तानुसार इच्छाओं से कर्म, कर्म से प्रारब्ध एवं प्रवृत्ति और इनके आधीन जीवन के प्रसार का चक्र अनवरत रूप से घूमता रहता है। मानव अपनी विवेक बुद्धि द्वारा इस चक्र से मुक्त हो सकता है।

***3(d)* चार प्रकार के कर्म-फल :-** मानव द्वारा किए गये पापों, जैसे - झूठ, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि से चार प्रकार के कर्मफलों की उत्पत्ति होती है - सत्कर्मों से सुफल भी मिलते हैं।

***(i)* सामाजिक अपमान एवम् सम्मान :-** भारतीय समाज में किसी भी पाप कर्म करने वाले व्यक्ति को ग्राम-पंचायत द्वारा दण्ड दिया जाता था। पूरे ग्राम के लोग उसका हुक्का-पानी बंद कर देते थे और उसे जाति से बाहर कर दिया जाता था, जब तक कि वह प्रायश्चित नहीं कर लेता था। सदाचरण से समाज में सम्मान भी मिलता है।

***(ii)* राजदण्ड एवम् पुरस्कार :-** उपरोक्त दण्ड के बाद भी यदि व्यक्ति में कोई सुधार नहीं होता था, तो उसे राजा के द्वारा कोड़े मारने से लेकर मृत्यु दण्ड तक की सजा दी जाती थी। श्रेष्ठ आचरण करने पर भारतरत्न जैसा राजकीय सम्मान मिलना भी सम्भव है।

***(iii)* रोगी एवम् स्वस्थ्य शरीर :-** किसी भी पाप कर्मी पर प्रकृति स्वयम् भी अपना कार्य लगातार करती रहती है। उस पापी का मन बेचैन होने लग जाता है। वह ठीक से सो नहीं सकता। भयभीत रहता है और इस प्रकार पहले वह विक्षिप्त मानसिक दशा का, तत्पश्चात् अनेक शारीरिक रोगों का शिकार हो जाता है। घबराहट के कारण उस पापी की अन्तर-ग्रंथियों (Endocrine glands) से निकलने वाले जीवनरसों (Hormones) का संतुलन बिगड़ जाता है। घबराहट को संतुलित करने के लिए गुर्दे से एड्रीनेलिन (Adrenalin) नामक रस निकलता है, जो शरीर में विषाक्तता उत्पन्न करता है। जीवन रसों के बारम्बार के असंतुलन से तथा मन की विक्षिप्त अवस्था से शरीर में ऐसी अनुकूलता उत्पन्न हो जाती है, कि विशिष्ट प्रकार का रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाता है और उसी प्रकार का रोग शरीर में उत्पन्न हो जाता है, जिस प्रकार की अनुकूलता अथवा विषाक्तता उस पाप-कर्म के कारण शरीर में पैदा हो जाती है। इस अनुकूलता को होम्योपैथी की भाषा में Susceptibility के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद शास्त्र पाप कर्म द्वारा रोग उत्पत्ति की बात को पूरी दृढ़ता से मान्यता प्रदान करता है, जबकि आधुनिक विज्ञान रोगाणु के प्रवेश अर्थात् संक्रमण (Infection) को ही रोग का कारण मानता है। वस्तुतः जीवन में घटी हर घटना सुकर्म हो अथवा पापकर्म अवचेतन मस्तिष्क में चुम्बकीय विद्युत तरंगों के रूप में स्थित रहती है और प्रतिकूल वातावरण एवम् **'प्राणशक्ति'** के कमज़ोर पड़ते ही ये तरंगें भौतिक रूप धारण कर तरुण (Acute) रोग के रूप में प्रकट हो जाती हैं। यह स्थिति अति सूक्ष्म है, अतएव इस प्रकार की स्थिति को आधुनिक विज्ञान अभी तक पहचान नहीं पाया है। जब विज्ञान इस अनुकूलता अर्थात् संक्रमण से पूर्व की तैयारी को समझ लेगा, तब वह मानव द्वारा किए गये पापों से रोगों की उत्पत्ति को स्वीकार कर लेगा और उस दिन कर्म के सिद्धान्त को स्पष्ट मान्यता मिल जाएगी।

बहुत से बच्चे पैदा होते ही रोगी उत्पन्न होते हैं। एड्स से पीड़ित माता-पिता की संतान सौ प्रतिशत एड्स से पीड़ित पायी जाती है। आधुनिक विज्ञान इसे मान्यता प्रदान करता है,

क्योंकि वह प्रयोगशाला में एड्स के वायरस को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र (Microscope) से देख सकता है। परन्तु जिस प्रकार होम्योपैथी तीन प्रकार के रोगबीजों को माता-पिता से वंशगत धातु-दोष के रूप में मान्यता देती है तथा इन तीन रोगबीजों से जीवन में अनन्त रोगों की उत्पत्ति को मानती है, उस प्रकार की स्थिति को आधुनिक विज्ञान अब तक नहीं पहचान पाया है, क्योंकि वंशगत धातु-दोष अवचेतन मन (Sub-conscious) में सूक्ष्म तरंगों के रूप में स्थित रहता है, जो आधुनिक विज्ञान के यन्त्रों की पकड़ से अभी दूर है। अवचेतन मन में 'रोगबीज' की पृष्ठभूमि हमारे पापकर्मों के कारण उत्पन्न होती है, यह बात ***अष्टम सत्र*** तथा पुस्तक के भाग-3 में विस्तार से बतलायी गयी है [a]। प्राकृतिक नियमों को धारण करने पर पूर्ण स्वास्थ्य का लाभ मिलता है, जिससे तन, मन व चित्त सदैव प्रसन्न रहता है।

(iv) **मानव एवं निकृष्ट योनि :-** जीवन भर मानव जिस प्रकार के विचारों और कर्मों में डूबा रहता है, वे सब उसके अवचेतन मन पर छपते रहते हैं। अनेक पापपूर्ण स्मृतियों से उसकी ऐसी फाइल अथवा नमूना तैयार होता है, जो एक खास प्रवृत्ति (Tendency) का निर्माण करती है। उस खास प्रवृत्ति के आधार पर मृत्यु के समय उस जीवात्मा की भावी योनि का निर्णय होता है और कीड़ों-मकोड़ों से लेकर पेड़-पौधों, पशु-पक्षी अथवा मानव योनि में ही निकृष्ट स्तर का प्राणी होकर उन पापों को भोगने हेतु उसे जन्म लेना पड़ता है। उदाहरण हेतु अति कामुकतापूर्ण जीवन जीने वाला मानव कुत्ता अथवा हाथी बन सकता है। अति क्रूर तथा हिंसक प्रवृत्ति वाला मानव शेर, चीता अथवा बाघ बन सकता है। कुछ व्यक्ति मानव योनि पाकर भी कामुकता एवम् हिंसा से पूर्ण पशुवत जीवन जीते हैं। वस्तुतः कोई भी योनि का निर्माण मानव की जीवन भर के सम्पूर्ण कर्मों के लेखा-जोखा से निर्मित प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। इस प्रकार जीवात्मा पशु से भी निकृष्ट योनि में जा सकता है। भावी योनि से सम्बन्धित निर्णय विराट में स्थित ***'विष्णुशक्ति'*** (Super Computer) द्वारा लिए जाते हैं, जो हमारे कर्मों के आधार पर और एकदम सटीक होते हैं। **ईश्वरीय मार्ग पर चलता हुआ मानव अन्त में मोक्ष जैसी दुर्लभ स्थिति को प्राप्त कर लेता है अर्थात् आवागमन के चक्र से सदा के लिए मुक्ति पा लेता है।**

❖ **कर्मफल भोग पर पौराणिक कथा :-** एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन एक जंगल में स्थित एक बड़ी झील के पास से होकर जा रहे थे। उन्होंने देखा, कि एक मछुआरा बड़ी संख्या में झील में जाल फेंक कर हजारों मछलियों को पकड़-पकड़ कर किनारे पर इकट्ठी कर रहा था। मछलियाँ पानी के बिना तड़प-तड़प कर बेचैन हो रही थीं और बहुत-सी मर भी गयी थीं। अर्जुन को बड़ी करुणा आई। उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा महाराज ! यह मछुआरा इतना बड़ा पाप कर रहा है, कि हजारों जीवों की हत्या करके इन्हें तड़पा-तड़पा कर मार रहा है, क्या इस कर्म का इसको फल नहीं भोगना पड़ेगा ? भगवान ने कहा, अर्जुन ! इसे अवश्य ही इसका फल भोगना होगा।

इस घटना को कोई बारह वर्ष बीत गये और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण तब फिर इसी झील

---

a इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु पुस्तक के भाग-3 में एक लेख *"Scientific Analysis of Homoeopathy"* संलग्न है ।

के पास उसी जंगल से गुजरे। तब वे क्या देखते हैं, कि एक नौजवान हाथी जिसकी सूँड़ दो पेड़ों के बीच फँसी पड़ी थी और वह चिग्घाड़-चिग्घाड़ कर हार गया था, परन्तु वह सूँड़ बाहर नहीं आ पा रही थी। जब वह हाथी कई दिनों से भूखा-प्यासा थक गया, तो मृत्यु के किनारे पर पहुँच गया। अब हजारों चींटियों ने मिलकर उस हाथी को एक ओर से खाना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे उन हजारों चींटियों ने उसे खा डाला।

इस दृश्य को दिखलाते हुए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाने लगे, कि देखो अर्जुन ! यह वही मछुआरा है, जो आज नौजवान हाथी बना हुआ है तथा अपनी सूँड़ को पेड़ों के बीच में फँस जाने से असहाय होकर थककर मरणासन्न हो गया और ये हजारों-लाखों चींटियाँ वे मछलियाँ हैं, जिनको इस मछुआरे ने अपने जाल में फँसा कर तड़पा-तड़पा कर मारा था। इन चींटियों ने इस प्रकार अपना बदला ले लिया है। तभी तो गीता में कहा गया है, कि ***''गहना कर्मणो गतिः''*** अर्थात् कर्म की गति को समझना अति कठिन है [a]। कर्म का सिद्धान्त इतना कठोर है, कि यदि परमात्मा भी मानव देह धर कर पृथ्वी पर अवतरित होता है, तो यह सिद्धान्त उस पर भी लागू होता है। पौराणिक कथा के अनुसार श्रीराम जी ने बाली को बहेलिए की भाँति वृक्ष के पीछे से छुप कर बाण का संधान किया था। इसी कर्म का फल उन्हें कृष्णावतार में भोगना पड़ा था। उनकी मृत्यु भी बहेलिए के द्वारा मारे गये बाण से ही हुई थी। श्रीकृष्ण ने पूरे कौरव कुल के विनाश में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था, उसी प्रतिफल के कारण उन्हें यादव वंश का विनाश भी अपने जीवनकाल में ही देखना पड़ा।

इन्हीं उद्धरणों को मानव जीवन के अनेक क्षेत्रों में देखा जा सकता है, जैसे मनुष्य से जाने-अनजाने रूप में बहुत से जीवों की हत्या होती रहती है तो उन जीवों द्वारा बदला लेना स्वाभाविक है। यह देखा जाता है, कि मानव की आँतों में लाखों-लाखों जीवाणु निवास करते हैं, जो आँतों को कुतरते रहते हैं तथा पेचिश (Colitis) से लेकर न जाने कितनी बीमारियों की उत्पत्ति के कारण बनते हैं और मानव उन बीमारियों से उत्पन्न क्लेशों को भोगने को विवश रहता है। फिर ऋतु परिवर्तन अथवा महामारी के प्रकोप से सामूहिक रूप से लाखों लोग बीमार होते देखे जाते हैं तथा अनेक मर भी जाते हैं। यह सब भी तो कीटाणुओं द्वारा बदला लेने का स्वरूप है, परन्तु यह बदला सीधे-सीधे नहीं होता है, बल्कि किसी पाप कर्म के साथ जुड़ा होता है और जीवात्मा को वे जीवाणु उस पाप कर्म का भोग कराने हेतु निमित्त भर बन जाते हैं। एक दो उदाहरण और देखें, जैसे कि किसी व्यक्ति को अचानक कोई साँप काट लेता है और वह व्यक्ति मर जाता है। कुछ अति बुद्धिवादी इसे मात्र संयोग कह कर टाल देते हैं। कोई हिंसक पशु मनुष्य को खा लेता है। इन सब गहराइयों को विज्ञान अभी तक समझ नहीं पाया है। वह कीड़ों को जितना-जितना मार डालने के रसायन आदि तैयार करता है, उतने ही कीटाणुओं की अनेक नयी-नयी कठोर प्रजातियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह खेल अनन्त है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का विज्ञानियों का स्वप्न कभी भी पूर्ण रूप से सफल होने वाला

---

a **कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।** *(गीता-4/17)*
अर्थ :- कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये तथा निषिद्ध कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि **कर्म की गति गहन है।**

नहीं है, क्योंकि ***पूरी सृष्टि एक सूत्र में बँधी हुई है*** [a], ***जो परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करती हुई यूं ही कर्म के सिद्धान्त के अनुसार क्रियाशील रहती है और इन सब क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का नियन्ता वह अदृश्य, अमूर्त, अव्यक्त परमात्मा है, जो मात्र 'अस्तित्व' भर है।*** आज वैज्ञानिक भी लगभग इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं। उस परमात्मा के ***'अस्तित्व'*** मात्र से कठोर नियमों से बँधी हुई यह प्रकृति, सम्पूर्ण कार्य करती है। यह बात जितनी शीघ्र समझ आ जाए, विश्व मानव के लिए उतना ही हितकर होगा।

भारत में आम जनता में सत्यनारायण व्रत बहुत प्रचलित है। यह व्रत बहुधा प्रत्येक माह की पूर्णमासी के दिन किया जाता है। इस व्रत में कथा आती है, कि एक व्यापारी ने अपनी प्रतिज्ञा को भुला दिया था अर्थात् अपने जीवन में सत्य को धारण नहीं किया, अतएव उसे जेल की यातना झेलनी पड़ी थी। दूसरी बार भी उसने एक दण्डी स्वामी को दान देने से बचने के लिए झूठ बोल कर यह कह दिया, कि उसकी नाँव में खर-पतवार भरा है। इतना कहते ही उसकी नाँव से हीरे-जवाहरात ग़ायब हो गये और खर-पतवार भर गया। इन छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से आम आदमी तक कर्म के सिद्धान्त को बारम्बार समझाने का प्रयास किया गया है, ताकि संस्कार गहरा बन जाये और साधक उसे जीवन में अपना ले। जब भी मानव झूठ बोलता है, उसका पूरा का पूरा अवचेतन मन इतना अधिक काँप जाता है, जितना कदाचित् किसी अन्य पाप से नहीं काँपता। सभी पाप कर्मों की परिणति भय में होती है। क्योंकि झूठ बोलने के तुरन्त बाद व्यक्ति अत्यधिक भयभीत रहने लग जाता है, अतएव वह बहुत शीघ्र कर्मफल भोगने को विवश हो जाता है। तभी तो रामचरितमानस में कहा गया है, कि ***''नहिं असत्य सम पातक पुंजा''*** [b]।

एक झूठ को अनेक पापों के ढेर से भी बढ़कर बतलाया गया है, क्योंकि ***'धर्म'*** का प्रथम सूत्र है ***'सत्य भाषण'***। सत्य भाषण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध संत कबीरदास जी का कथन है :-

''साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप। जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप।।''

अर्थात् सत्य को धारण करने वाले के हृदय में परमात्मा साक्षात् विराजमान रहता है। आज आम आदमी निडर होकर झूठ बोल रहा है, परन्तु वह यह नहीं जानता, कि इसी जीवन में इस पाप के कारण उसे कितनी बड़ी यातना झेलनी पड़ेगी। आज इस विषय पर विज्ञान को गहन शोध करना है, जिससे ***पूरे विश्व मानव की आँखें खुल जाएं और***

---

a The most important characteristic of the Eastern world view – one could almost say the essence of it – ***is the awareness of the unity and mutual interrelation of all things and events, the experience of all phenomena in the world as manifestations of a basic oneness.*** All things are seen as inter-dependent and inseparable parts of this cosmic whole, as different manifestations of the same ultimate reality. The eastern traditions constantly refer to this ultimate indivisible reality, which manifest itself in all things and of which all things are parts. It is called **'Brahman'** in Hinduism.....

(Page-141 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)

b *श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दो. 27-28 के मध्य*

असीमित पापाचार पर अंकुश भी लग सके।

एतरेय-उपनिषद् में एक महावाक्य का उल्लेख आया है -

"प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् प्रज्ञानेत्रो लोकः, प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानम् ब्रह्म [a]।"

इस वाक्यांश का भावार्थ गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक में दिया गया है, कि यह समस्त ब्रह्माण्ड प्रज्ञान स्वरूप परमात्मा की शक्ति से ही ***'ज्ञान-शक्ति'*** युक्त है, जिसका अर्थ आज की विज्ञान की भाषा में ***'जीन'*** शब्द से बहुत मेल खाता है, अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि की रचना, पालन एवम् संहार का आधार मानव अवचेतन मन में एकत्रित सूचनाएं (Informations) अथवा कर्म ही हैं। जिस दिन विज्ञान यह प्रमाणित कर सकेगा, कि जीवात्मा का हर छोटी-बड़ी योनि में जन्म लेने का आधार ***'प्रज्ञान'*** (Genes) से उत्पन्न प्रवृत्ति (Tendency) है, उसी दिन वैदिक धर्म के ***'कर्म' सिद्धान्त की सम्पूर्ण रूप से पुष्टि हो जाएगी और तब पुनः मोक्ष प्रवण समाज की रचना होगी।*** वह समय अधिक दूर नहीं है। अस्तु !

संसार का कोई भी प्राणी इस सिद्धान्त से ऊपर नहीं है। सभी जीव, जब तक कि वे उपर्युक्त छह मुख्य तकनीकों की साधना द्वारा अपने को आवागमन के चक्र से छुड़ा नहीं लेते, चार प्रकार के परिणामों के अन्तर्गत जीवन जीने को विवश हैं। यही मानव जीवन का अन्तिम एवम् चरम लक्ष्य है। ***इतना बड़ा ज्ञान भारतीय ऋषियों ने ही जाना। पूरे विश्व को इस मोक्ष जैसे महान विचार की वैज्ञानिक समझ प्रदान करना इस संस्थान के मुख्य उद्देश्यों में से एक है।***

3(e) **चौरासी लाख योनियों का चक्र :-** श्रीमद्भगवद् गीता [b] में कहा गया है, कि मनुष्य, जीवन-भर जिन-जिन भावनाओं (विचारों) से भावित रहता है, प्रायः अन्त समय में वही भाव स्मृतिपटल पर उभरता है। जो पापाचारी, क्रूरकर्मी मनुष्य हैं, उनको भगवान शूकर-कूकर आदि नीच योनियों में उत्पन्न करते हैं अर्थात् घोर नरकों में डालते हैं। सारांश यह है, कि मानव योनि में किए गये पाप कर्मों के कारण जीव को छोटी योनि, जैसे - कीड़े-मकोड़े से लेकर वृक्ष-लता, पशु-पक्षी कुछ भी प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार निम्न योनि का आधार मुख्य रूप से संग्रहीत सूचनाओं (संस्कारों) की गुणवत्ता और संख्या पर निर्भर करता है। जीवन में जिस कर्म की बारम्बार आवृत्ति की जाती है, वह कर्म उच्च आवृत्ति वाले

---

a *एतरेय उपनिषद्-3.1.3*

b **यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।** *(गीता-8/6)*
अर्थ :- हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस-उस भाव को ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा जिस भाव का चिन्तन करता है, अन्तकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है ।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।। *(गीता-16/19)*
अर्थ :- उन द्वेष करने वाले, पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बारम्बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूँ अर्थात् शूकर, कूकर आदि नीच योनियों में ही उत्पन्न करता हूँ ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।। *(गीता-16/20)*
अर्थ :- इसलिए हे अर्जुन ! वे मूढ़ पुरुष मेरे को न प्राप्त होकर, जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं। फिर उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं ।

संस्कार के रूप में चित्त में रिकार्ड हो जाता है तथा मृत्यु के समय जीवन भर की इन्हीं सूचनाओं (संस्कारों) का कम्प्यूटरीकृत परिणाम प्राण-शक्ति की विशिष्ट आवृत्ति (frequency) वाली चुम्बकीय विद्युत तरंगों में बदल जाता है। प्राण की यही आवृत्ति एक विशिष्ट प्रवृत्ति (Tendency) का रूप ले लेती है और तब यह विद्युत तरंग के रूप में ***'आल्फा'*** पटल पर लिख जाता है, जो भावी जीवन के लिए प्रारब्ध का कार्य करता है, तब भोगे जाने वाली सूचनाओं के आधार पर जिन्हें ***'प्रारब्ध'*** वाली सूचनाओं के नाम से जाना जाता है, जीवात्मा की ***'आल्फा'*** प्लेट, आकाश में उपलब्ध ऊर्जा से निश्चित देह का सृजन कर लेती है तथा फिर उन निहित कर्मों (संस्कारों) को भोगती है।

शेष बची अनेकानेक ***सूचनाएं*** (संस्कार) जो जीवात्मा ने अनेक जन्मों में संग्रह की होती हैं, वे ***'आल्फा'*** पटल पर रहते हुए भी प्रच्छन्न रहती हैं, जिन्हें ***'संचित'*** संस्कारों के नाम से जाना जाता है। जब तक एक भी ***'संस्कार'*** शेष रहता है तथा जिस देह में वह ***सूचना*** (संस्कार) को भोगा जाना सम्भव होता है, प्राणी को उसे भोगने हेतु वैसी देह धारण करनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में महाभारत में एक कथा निम्न प्रकार से बतलायी गयी है।

❖ **महाभारत में वर्णित कथा :-** पितामह भीष्म को बाणों की शय्या पर लेटे-लेटे अपार कष्ट हो रहा था, तभी उन्हें यह विचार आया, कि उन्होंने अपने किस जन्म में ऐसा कौन-सा पाप किया था, कि इतना खून शरीर से बहा और अत्यन्त पीड़ा भी सहनी पड़ी। यह सोचकर उन्होंने पिछले सौ जन्मों के लेखा-जोखा (Computer Record) का अपने अन्तरमन द्वारा निरीक्षण किया, तब उन्होंने पाया, कि इस मध्य उन्होंने ऐसा कोई पाप नहीं किया था। फिर यही प्रश्न उन्होंने भगवान कृष्ण से पूछा, तो उन्होंने भीष्म को अपना एक सौ एकवें जन्म के लेखा-जोखा का निरीक्षण करने की सलाह दी। उस जन्म में भीष्म ने खेल-खेल में एक सर्प को उठा कर काँटों की झाड़ी के ऊपर फेंक दिया था और वह सर्प तब लम्बे समय में तड़प-तड़प कर मरा था। उन काँटों की चुभन व तड़पन भीष्म को इस प्रकार इस जन्म में भोगनी पड़ी। अतएव किसी भी जन्म का किया गया कर्म का फल, भोगे बिना समाप्त नहीं होता, यह बात भगवान श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह को समझायी और कहा, कि यह तुम्हारा अन्तिम कर्म था, जो तुमने भोग लिया है, इसके पश्चात् तुम जीवन-मरण से मुक्त हो जाओगे।

संस्कारों की गुणवत्ता और संख्या के द्वारा बुने गये ताना-बाना का निर्माण नकारात्मक मनोविकारों अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर (निन्दा करना), घृणा, ईर्ष्या, द्वेष एवम् भय से होता है। इन्हीं मनोविकारों से अनन्त पाप कर्मों की उत्पत्ति होती है। ऐसा लगता है, कि प्रतीकों की भाषा में रावण के दस सिरों का अर्थ दस उपरोक्त मनोविकारों से है। ***पाप कर्म का अर्थ है ऐसा कर्म, जिसके करने से मानव चित्त में स्थित 'प्राण' शक्ति का क्षय हो जाये। फलतः चित्त निम्न आवृत्ति (frequency) स्तर पर पहुँच जाता है।*** उसी प्रकार जीवात्मा पुण्य कर्मों, जैसे - दया, प्रेम, शान्ति, ध्यान, पूजन, जन-सेवा आदि के द्वारा सकारात्मक 'सूचनाओं' (संस्कारों) का संग्रह भी करता है। परिणामस्वरूप चित्त की आवृत्ति उच्च स्तर की हो जाती है और इन दोनों प्रकार के संस्कारों से एक मिला-जुला विशिष्ट प्रकार का मानचित्र (Pattern) तैयार होता है अर्थात् एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति का निर्माण होता है। मृत्यु के समय यही प्रवृत्ति जीवात्मा की भावी योनि की निर्णायक होती है।

मानव द्वारा किए गये सत्कर्मों एवम् दुष्कर्मों की पूरी फाइल जो अवचेतन मन में बड़ी तत्परता से अनवरत रूप से जीवन भर तैयार होती रहती है मृत्यु के समय कुछ ही क्षणों में मानव मन के आगे तेजी से घूम जाती है और उस पूरी फाइल की एक संक्षिप्त फिल्म बन जाती है, जो सूक्ष्म शरीर की आल्फा तरंगों पर रिकार्ड (Record) हो जाती है। तब जीवात्मा इसे साथ लेकर अन्तरिक्ष की अनन्त यात्रा पर चल पड़ती है। ***भारतीय मनीषियों की इन खोजों को अभी विज्ञान की मोहर लगनी बाकी है।*** यही कारण है, कि हर जीवात्मा को पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के फलों की प्राप्ति होती देखने में आती है। ***कई बार तो कुत्तों को गद्दे-तकिए, दूध-जलेबी और नौकरों तक की सेवा उपलब्ध होते देखी जाती है, जबकि बहुत से मानव, सड़कों पर भूख से तड़प-तड़प कर मर जाते हैं।*** कुछ जीवात्माएं ऐसे परिवार में जन्म लेती हैं, जहाँ पर अरबों-खरबों की सम्पत्ति की वे स्वतः ही उत्तराधिकारी बन जाती हैं, जबकि कुछ जीवात्माओं का जन्म ऐसे परिवार में होता है, कि उन्हें पेट भर रोटी भी नहीं मिलती। ऐसी सत्य घटनाओं को मात्र संयोग है, ऐसा कहकर टाला नहीं जा सकता। इन सब की पृष्ठभूमि में एक निश्चित ईश्वरीय विधान है और उस विधान का नाम है - ***'कर्म का सिद्धान्त'*** तथा यह 'कर्म का सिद्धान्त' विशुद्ध रूप से सूचनाओं (संस्कारों) के संग्रह का चमत्कार है। इस प्रकार जीवात्मा स्वयम् ही अज्ञानतावश ***'चौरासी लाख'*** प्रकार की प्रवृत्तियों का निर्माण करती है और उनमें चक्कर काटती हुई बारम्बार जन्म-मरण के अपार दुःखों में डूबती तथा व्याकुल होती फिरती रहती है।

कल्पना करें, कि किसी बुनकर द्वारा एक कालीन बुना गया है, उसमें उसने तरह-तरह के लाल, पीले, हरे रंगों के धागों से एक विशेष फूलदार डिज़ाइन तैयार किया है। फिर दूसरे कालीन में दूसरा डिज़ाइन। इसी प्रकार जीवात्मा तरह-तरह के विचारों, घटनाओं और कर्मों से उत्पन्न क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का **'आल्फा'** प्लेट पर स्मृतियों का एक विशेष प्रकार का **ताना-बाना का डिज़ाइन बना लेता है,** वह एक विशेष प्रवृत्ति का डिज़ाइन हुआ। उल्लेखनीय बात एक और है, कि जीवात्मा को अच्छे या बुरे कर्मों के करने का अवसर केवल मानव योनि में ही उपलब्ध होता है, क्योंकि मानव योनि जीवात्मा की पूर्ण विकसित अवस्था होती है और तब जीवात्मा अपने पूर्ण विकसित पाँचों इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त एवम् अहंकार के द्वारा अनेक पाप एवम् पुण्यों का चित्त में संग्रह करता है, जिन्हें भोगने हेतु ही उसे शेष सभी योनियों में जन्म लेना पड़ता है और वह तब तक नीची योनियों में घूमता रहता है, जब तक कि उसका एक भी पाप कर्म शेष रहता है। हमारे पूर्वजों ने ऐसी चौरासी (84) लाख प्रवृत्तियों की गणना की है, जिससे इतनी ही संख्या की योनियों का निर्माण होता है। भारतीय ग्रंथों का कथन है, कि हर जन्म तथा मृत्यु के समय जीवात्मा को भारी कष्ट से गुजरना होता है, अतएव ***जीवात्मा की इतनी भारी व्यथा को जानकर भी यदि मानव की विवेक बुद्धि जागृत न हो, तो यह शोचनीय है।*** इस सम्बन्ध में हमारे पूर्वजों ने हमें महान ज्ञान देकर विधिवत सावधान किया है। ***इस महान एवम् अद्वितीय ज्ञान को हमारी संस्था 'ज्ञान-विज्ञान कार्यक्रम' के द्वारा विश्व को देना अपना कर्त्तव्य समझती है।***

3(f) **पशु अथवा मानवेतर योनि और मानव में अन्तर :-** जहाँ तक जीवात्मा की रचना का प्रश्न है, सभी जीवात्माओं की रचना एक समान है। अन्तर है, तो बस इतना, कि

मानवेतर (***मानव के अतिरिक्त***) योनियों में ***'प्रज्ञान'*** अर्थात् ***'सूचनाओं'*** का संग्रह उतना ही होता है, जितना कि उस योनि में भोगने के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार की सूचनाओं को ***'प्रारब्ध'*** के नाम से जाना जाता है। वासनाएं (सूचनाएं) तीव्रता के क्रम से कुंडलनी में प्रारब्ध के रूप में संग्रहीत रहती हैं और उसी क्रम में जीवन में वे व्यक्त भी होती हैं। क्योंकि मानव योनि श्रेष्ठतम है, अतः इस योनि के ***'आल्फा'*** पटल पर सूचनाओं का अम्बार होता है, फिर भी मानवों में भी श्रेष्ठ एवम् विद्वान मानव शरीर की ***'आल्फा'*** प्लेट पर सूचनाओं की संख्या एवम् गुणवत्ता बिल्कुल भिन्न होती है। इस बात को आज के कम्प्यूटर में अलग-अलग फाइलों में संग्रहीत सूचनाओं की गुणवत्ता और संख्या से ठीक से समझा जा सकता है।

4. मृत्यु लोक एवम् स्वर्गलोक का सिद्धान्त :- आधुनिक विज्ञान के अनुसार हर बीज में सारी सूचनाएँ पहले से ही विद्यमान रहती हैं, कि उस पेड़ का तना कैसा होगा, पत्ते कैसे होंगे, फूल कैसा होगा, फूल का रंग अथवा गन्ध क्या होगी, फल कैसा होगा एवम् फल का स्वाद व रंग कैसा होगा, इत्यादि। इसी प्रकार हर सूक्ष्म शरीर [a] (जीवात्मा) पूर्व जन्म में अर्जित सूचनाओं को अपने चित्त पटल पर संजोए रखता है, जिसके आधार पर बारम्बार नाना प्रकार की देहों को धारण करता है। इस प्रकार सभी जीवात्माएं अपने कर्मफलों को भोगने हेतु जीवन एवम् मृत्यु के चक्र में घूमती रहती हैं, तथा ***मृत्यु एवम् अगले जन्म के बीच के समय में जीव आकाश में किसी विशिष्ट स्थान पर मन द्वारा किए गये पाप व पुण्यों को दुःखों अथवा सुखों के रूप में अनुभव करता है।*** जिस प्रकार एक नदी ग्लेसियर से पिघलकर कल-कल निनाद करती हुई समुद्र में विलीन हो जाती है, लेकिन ***'चक्र'*** के सिद्धान्त के अनुसार पर्वतों पर मेघों द्वारा जल तथा बर्फ की वर्षा होती है और ग्लेसियर का पुनः निर्माण हो जाता है। इस स्थिति को नदी की सुप्तावस्था समझा जा सकता है। उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा का नरक अथवा स्वर्गलोक में दुःखानुभूति अथवा सुखानुभूति हेतु मृत्यु एवम् जन्म के मध्य ठहराव की जो कालावधि है, उसको जीव की अस्थायी तौर पर सुप्तावस्था कहा जा सकता है। क्योंकि जीवात्मा (सूक्ष्म शरीर) के साथ मन-बुद्धि संयुक्त रहते हैं, अतः नरक अथवा स्वर्ग लोकों में होने वाले दुःख एवम् सुखों की अनुभूतियाँ ***मन की कल्पनाएं*** होती हैं। इसी को नरक एवम् स्वर्ग का नाम दिया गया है। जो पाप एवम् पुण्य शरीर द्वारा किए गए होते हैं, जीवात्मा उन्हें भोगने हेतु फिर किसी उचित माँ के गर्भ में, मृत्यु लोक (पृथ्वीलोक जहाँ पर जन्म एवम् मरण का चक्र निरन्तर घूमता रहता हो) में जन्म लेती है और पूर्व सूचनाओं (Informations) के आधार पर जीवन जीती है।

आज पेड़, पौधों की प्रजातियों को इन सूचनाओं (Genes) में परिवर्तन लाकर नयी-नयी प्रजातियाँ उत्पन्न की जा रही हैं, जैसे - नीले रंग का गुलाब, तरबूज जितना बड़ा टमाटर अथवा मछली का जीन मिला हुआ उच्च प्रोटीन युक्त कद्दू आदि। इसी प्रकार मानव के Genes में परिवर्तन कर सकने की तकनीक का विकास भी बड़ी तेजी से हो रहा है। इस तकनीक को वंश सुधार तकनीक (Genetic Engineering) के नाम से जाना जाता है।

---

a इसी सत्र में 'सूक्ष्म शरीर की संरचना' का चित्र संख्या-2.03 पर दिया गया है ।

इस तकनीक से अनेक कठिन रोगों का उपचार होने की सम्भावना है। ***सम्भव है, कि इस तकनीक की चरम परिणति मानव की सम्पूर्ण कम्प्यूटर चिप की समाप्ति तक हो। जिससे जन्म-मरण का चक्र ही समाप्त हो जाये। यह एक सुखद कल्पना है।***

5.*(a)* मोक्ष की अवधारणा :- प्रकृति का प्रत्येक कण निरन्तर गति करता हुआ अपने उद्गम स्थल की ओर जाने के लिए प्रवृत्त रहता है, यह नियम शाश्वत है। जैसे नदियाँ ग्लेशियर से निकल कर समुद्र की ओर पूरी शक्ति से दौड़ती रहती हैं, ताकि वे अपने उद्गम स्थल को प्राप्त कर लें और उसमें अपने को विलीन कर दें, ठीक उसी प्रकार हर जीवात्मा परमात्मा में विलीन होने के लिए बेचैन रहती है। क्योंकि जन्म-मृत्यु का रहस्य आल्फा तरंगों पर लिखी जाने वाली सूचनाओं पर आधारित है, अतएव ***'निष्काम-सेवा', 'भक्ति', 'ज्ञान-विज्ञान', 'समाधि', 'सांख्य-योग' अथवा 'तन्त्र-योग' द्वारा इस प्लेट पर ऐसा कुछ भी लिखे जाने को रोकने का प्रयास किया जाता है, जिससे कर्मफल उत्पन्न न हो और तब आल्फा तरंगों के पटल पर लिखे गये लेख के शून्य (Recording Zero) होते ही, ये तीनों तरंगें आपस में सिमट कर आकाशगंगा के केन्द्र में समा जाती हैं। यही मोक्ष का अर्थ है। यह संस्था इस सर्वोच्च विचार को नयी पीढ़ी तक पहुँचाना चाहती है।***

5(b)* मुक्ति एवम् मोक्ष में अन्तर :-** जो जीवात्माएं परमात्मा की अद्वैत भाव से उपासना करती हैं अथवा जिनकी सम्पूर्ण वासनाएं (Informations) उनके अवचेतन मन से मिट जाती हैं, उनकी तीनों 'आल्फा', 'बीटा' एवम 'गामा' तरंगें सिमट कर आकाशगंगा के केन्द्र में समा जाती हैं और जीवात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता, इसे ***'मोक्ष' अर्थात् ***मोह का क्षय*** (नष्ट होना) कहते हैं, जबकि द्वैत भाव से परमात्मा की उपासना करने वाली जीवात्माओं अथवा जिन जीवात्माओं को ईश्वर प्रेरणा से संसार में प्राणियों के हित के लिए जन्म लेने की इच्छा शेष रह जाती है, ऐसी महान आत्माएं समय-समय पर मानव धर्म के विकृत स्वरूप की पुर्नव्याख्या करने हेतु अथवा सुधारक के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होती रहती हैं; ये आत्माएं 'बैकुण्ठ लोक' में वास करती हैं, इस प्रकार की स्थिति को ***'मुक्ति'*** कहते हैं। ***'मुक्ति'*** पाँच प्रकार की होती है - *(i)* सारूप्य *(ii)* सालोक्य *(iii)* सायुज्य *(iv)* सामीप्य एवम् *(v)* सार्ष्टि।

(*i*) **सारूप्य :-** जो भक्त विष्णु भगवान का ध्यान करते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे वैकुण्ठ में विष्णु का स्वरूप धारण करते हुए निवास करते हैं।

(*ii*) **सालोक्य :-** जो भक्त जीवन भर विष्णु भगवान का भजन-पूजन आदि करते हैं तथा वैकुण्ठ की इच्छा करते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे प्रकाश शरीर धारण किए हुए वैकुण्ठ में निवास करते हैं।

(*iii*) **सायुज्य :-** जो भक्त, सखा, पुत्र, भ्राता, पिता आदि की भावना रखते हुए भगवान विष्णु की भक्ति करते हैं, वे प्रकाश शरीर में रहते हुए उसी सम्बन्ध के अनुरूप भगवान से प्रतिफल प्राप्त करते हैं।

(*iv*) **सामीप्य :-** भक्त की भावना के अनुसार ही भगवान भक्त को अपने निकट स्थापित करते हैं।

(ङ) **सार्ष्टि :-** यह उत्तम कोटि की मुक्ति है। इस मुक्ति में जीवात्मा स्वच्छन्दता से सम्पूर्ण सृष्टि में कहीं भी घूमती-फिरती रह सकती है। जैसे सनकादि ऋषियों को पूरी स्वतन्त्रता मिली हुई है, ठीक ऐसी ही स्वतन्त्रता सार्ष्टि मुक्ति में जीवात्मा को प्राप्त होती है, परन्तु यह विरली घटना ही होती है।

5(c)* मोक्ष प्रवण समाज रचना :-** ऋषियों ने ***'मोक्ष' जैसी महान खोज के पश्चात् यह देखा, कि पूरा मानव समाज बारम्बार संसार सागर में जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़कर महान कष्ट का अनुभव करता है। ***शास्त्रों में कहा गया है, कि माँ के गर्भ में पड़ा हुआ और मृत्यु के समय जीव घोर कष्ट से छटपटाता है, परन्तु तब वह इस कष्ट को व्यक्त कर सकने की स्थिति में नहीं होता और जन्म के बाद जीव उन कष्टों को भूल जाता है। अतएव ऋषियों ने तय किया, कि समाज का ढाँचा ही ऐसा बनाया जाये, जिससे सभी मानव इस चक्र से मुक्त हो सकें।*** अतएव उन्होंने इस कल्याणकारी विचार को व्यवहारिक रूप देने हेतु बहुत से उपाय किए। उनमें से मुख्य-मुख्य बातें निम्न प्रकार से हैं :-

(i) वेदों, पुराणों, भागवत कथाओं का लेखन।

(ii) सत्संग, पूजा-अर्चना, अनुशासनपूर्ण जीवन जीने की शिक्षा, आम आदमी के कल्याण के लिए ***'सगुण-साकार'*** उपासना, ***'भक्ति'***, ***'ज्ञान'*** एवम् ***'कर्म'*** साधना विधियों आदि का निरन्तर प्रचार-प्रसार करते हुए मानव के इस चरम लक्ष्य की उसे सदैव याद दिलाते रहना।

(iii) राज्य व्यवस्था पर ***'धर्म' का अंकुश, 'वर्णाश्रम व्यवस्था', 'संस्कार व्यवस्था'*** आदि ऐसे अनेक उपाय हैं, जिनसे समाज का हर घटक स्वतः ही ईश्वर की ओर बढ़ता जाता है। समाज पर 'धर्म' का अंकुश बना रहे, इसको सुनिश्चित करने हेतु राज्य की व्यवस्था ***'ऋषि तन्त्र'*** [a] द्वारा संचालित थी।

ऋषियों की दृष्टि सर्वांगपूर्ण थी। उन्होंने मानव जीवन में आवश्यक चार पुरुषार्थों अर्थात् ***धर्म, अर्थ, 'काम'*** एवम् ***'मोक्ष'*** की शिक्षा दी। भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण आज मात्र अर्थ को ही मानव जीवन का लक्ष्य माना जा रहा है, जिससे मानव जीवन अनेक कष्टों से भरता जा रहा है और संकीर्ण दृष्टि के कारण भारतीय मनीषियों की सम्पूर्णता की सोच की सर्वत्र आलोचना की जाती है। भारतीयता की खिल्ली उड़ायी जाती है। ***'मोक्ष' किसने देखा है ? यह तो कपोल-कल्पना मात्र है, यह कह कर उसे नकारा जाता है। एक बार यह मान भी लिया जाये, कि 'मोक्ष' नामक अवधारणा का कोई प्रमाण नहीं है, तब भी उपरोक्त व्यवस्थाओं से समाज अधिक उच्च गुणवत्ता की सोच वाला, सुख-शान्ति वाला तथा मानवता के विचारों से पूर्ण बनता है, यह तो स्वयम् सिद्ध है; जबकि मात्र धन लिप्सा से समाज में हत्या, लूटपाट, अशान्ति, कलह, व्यभिचार आदि ही तेज़ी से फैलते हैं और आज सर्वत्र ऐसा हो भी रहा है।***

'मोक्ष-प्रवण-समाज' रचना के सभी अंगों का क्रमशः अगले सत्रों में खुलासा किया जायेगा। विज्ञान धीरे-धीरे उन सभी बातों की पुष्टि करता जा रहा है, जिन्हें हमारे ऋषियों ने वेदों में बतलाया है और आशा है, कि ***'मोक्ष'*** जैसे विचार की भी आने वाले समय में पुष्टि

---

a ऋषि तन्त्र की विस्तृत जानकारी हेतु पुस्तक के तृतीय खण्ड में एक लेख *'वैदिक शासन व्यवस्था-ऋषि तन्त्र'* संलग्न किया गया है ।

हो ही जायेगी, तब समाज में अधिक सुख एवम् शान्ति का विस्तार होगा।

6. यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे :- जो कुछ मानव जीवन में घट रहा है, ठीक वैसा ही आकाशगंगा में भी हो रहा है। यह अपने आप में प्राचीन ऋषियों द्वारा शोधित आश्चर्यजनक खोज है, जो अभी तक आधुनिक विज्ञान की पकड़ से दूर है। मानव शरीर में अरबों कोशिकाएं (Cell) हैं, सहस्त्रों हर क्षण टूट रही हैं और नयी बन भी रही हैं। इसी प्रकार आकाश में अनेकानेक रोड़े पिण्ड बन रहे हैं और टूट रहे हैं। एक आकाशगंगा टूटती है और अन्यत्र और एक बन जाती है। यह विघटन एवम् सृजन एक अनवरत क्रिया है। ***पूरी सृष्टि कभी भी समाप्त नहीं होती और न फिर महानाद (Big-Bang) से शुरू होती है।*** सृष्टि निर्माण की भारतीय सोच पूरी तरह से तर्क सम्मत है।

ज्यामिति (Geometry) की दृष्टि से इस सिद्धान्त को और स्पष्टता से समझा जा सकता है। संलग्न चित्र में दो सप्तभुजी आकृतियाँ हैं, जिनकी भुजाएं छोटी तथा बड़ी हैं, परन्तु उनके कोण बिल्कुल समान हैं। कोण समान होने के कारण दोनों आकृतियों की भुजाओं का अनुपात एक जैसा है। इस प्रकार छोटी वाली आकृति ***'मानव'*** का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि बड़ी आकृति महामानव ***('विराट पुरुष')*** का प्रतीक है। दोनों आकृतियों के केन्द्र में चैतन्य सत्ता ***'आत्मा'*** एवम् ***'ब्रह्म'*** स्थित हैं, अतएव दोनों आकृतियाँ पूरी तरह से समान गुण धर्मा हैं। ***'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'*** सिद्धान्त का यही अर्थ है। परमाणु (Atom) एवम् आकाशगंगा के व्यवहार की समानता को इसी सिद्धान्त के संदर्भ में देखा जा सकता है तथा जीवात्मा [a] एवम् आकाशगंगा की समानान्तर रचना को भी इसी क्रम में देखना उचित होगा। समानताओं की तुलना करने में मुख्य बात है, कि उन दोनों के समान व्यवहार की अर्थात् उन दोनों की ***'प्रवृत्ति'*** समान है, तो ही वे इस सिद्धान्त के अन्तर्गत माने जाएंगे, भले ही उनकी बाह्य (भौतिक) रचना पूर्ण रूप से समान न भी हो। उदाहरण के लिए आधुनिक विज्ञान के अनुसार परमाणु (Atom) की रचना में एलेक्ट्रॉन का परिक्रमा पथ वलयाकार (Elliptical) है, जबकि आकाशगंगा का बाह्य घेरा सर्पिल है। दोनों में समानता यह है, कि परमाणु रचना में एलेक्ट्रॉन नाभि के चारों ओर घूमते हैं, उसी प्रकार से आकाशगंगा के बाह्य भाग में स्थित सूर्य भी केन्द्रीय स्तम्भ की निरन्तर परिक्रमा करते हैं। जिस प्रकार परमाणु रचना में प्रोटॉन

सप्तभुजी आकृतियाँ

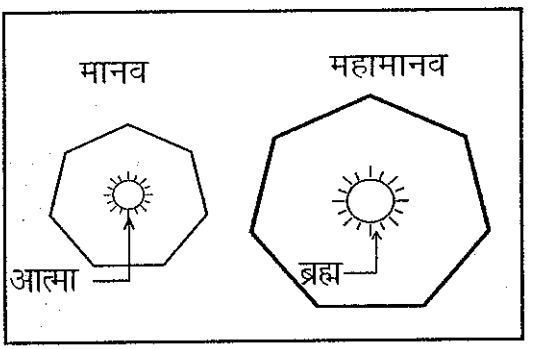

चित्र : 2.09

a 'जीवात्मा की संरचना' का चित्र संख्या 2.03 पर तथा 'परमाणु रचना' का चित्र संख 2.10 पर है ।

परमाणु की संरचना

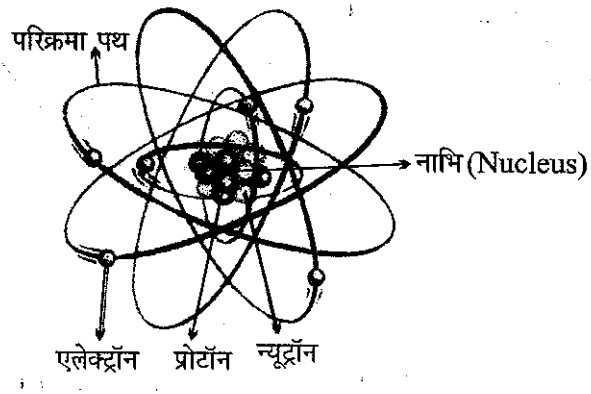

चित्र : 2.10

और न्यूट्रॉन कण नाभि के भीतर 40,000 मील प्रति सेकंड की तीव्र गति [a] से घूर्णन करने के कारण स्थिर जैसे लगते हैं। उसी प्रकार न्यूट्रॉन तारों से निर्मित केन्द्रीय स्तम्भ तथा प्रोटॉन तारा समूह (विष्णु लोक) भी तीव्र गति से घूर्णन कर रहे हैं फिर भी स्थिर से लगते हैं। गति सदैव सापेक्ष होती है, वह बात अलग है, कि पूरी आकाशगंगा अन्य आकाशगंगाओं की भाँति ही निरन्तर भाग रही है। स्थिर कुछ भी नहीं है। *कृपया पाठकगण भ्रम में न पड़ें।*

मानव पिण्ड (देह) में कौन-कौन से सात कोशों का समावेश है तथा इन्हीं सातों कोशों का विस्तार महापिण्ड (आकाशगंगा) में भी है, इसकी चर्चा चित्र संख्या 2.11 के माध्यम से निम्न पंक्तियों में की जा रही है -

"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" सूत्र का वैज्ञानिक विश्लेषण

महापिण्ड की रचना और विस्तार

(चित्र में 1 से 8 तक प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नों का स्पष्टीकरण)

***1.* ठोस, तरल एवम् गैसों की अणु (Molecule) अवस्था अर्थात् स्थूल (भौतिक) शरीर :-** चित्र में ठोस, तरल एवम् गैसों की अणु अवस्था दर्शायी गयी है। ये अणु सम्पूर्ण पदार्थ जगत, मानव शरीर तथा ब्रह्माण्ड में स्थित आकाशीय रोड़े पिण्डों से लेकर बड़े-बड़े सूर्यों तक (दृश्यमान भौतिक स्थूल जगत) को दर्शाते हैं। ब्रह्म का यही बाह्य वृत्त अथवा भौतिक कोश है।

---

a Being of the same quantum nature as Electrons, the 'Nucleons' – as the Protons & Neutrons are often called – respond to their confinement with high velocities and since they are squeezed into a much smaller volume their reaction is all the more violent. They race about in the Nucleus with velocities of about 40,000 miles per second. *(Page-84 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)*

2. परमाणु (Atom) एवम् कण (Particle) अवस्था अर्थात् अति दीर्घ चुम्बकीय विद्युत तरंगें अथवा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा :- आकाशगंगाओ से कणों एवम् परमाणुओं के रूप में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा निरन्तर विकीरित होती रहती हैं। चित्र में परमाणुओं एवम् कणों के वृत्त दर्शाये गये हैं। यही ब्रह्म का प्राणमय शरीर अथवा प्राणमय कोश है।

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे सिद्धान्त का वैज्ञानिक चित्रण

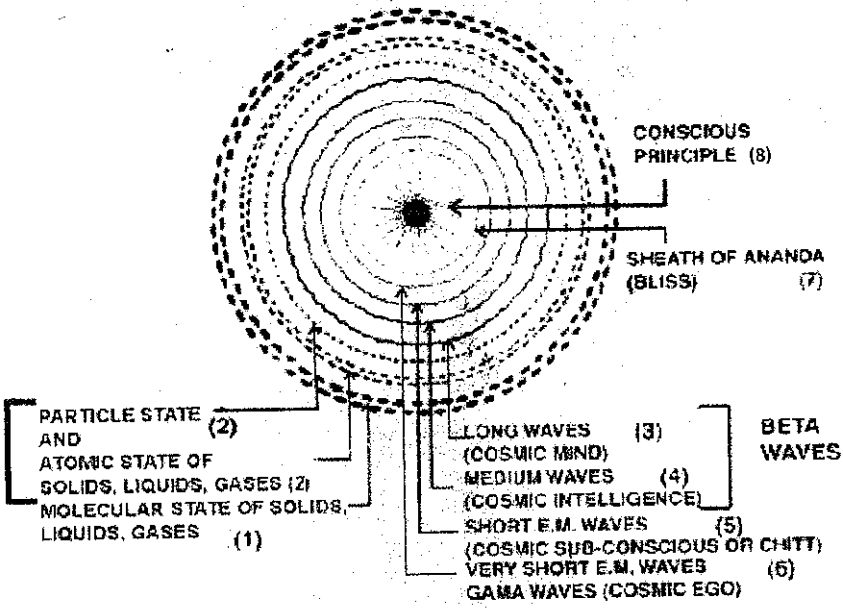

चित्र : 2.11

3. दीर्घ चुम्बकीय विद्युत तरंगें (ब्रह्माण्डीय मन) :- यह वृत्त ***'मध्यम चुम्बकीय'*** विद्युत (रज=बीटा) तरंगों से निर्मित है। ये तरंगें ब्रह्म के मन (सोचने) का कार्य करती हैं, अर्थात् पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा तथा नौ ग्रह मिलकर चुम्बकीय विद्युत प्रभाव द्वारा मानवों के मनों पर नियंत्रण रखते हैं।

4. मध्यम चुम्बकीय विद्युत तरंगें (ब्रह्माण्डीय बुद्धि) :- यह वृत्त ***'अति मध्यम'*** चुम्बकीय विद्युत (बीटा) तरंगों से निर्मित है, जो ब्रह्म की बुद्धि का कार्य करती हैं, अर्थात् आकाशगंगा के एलेक्ट्रॉन तारावृत्त पर स्थित सूर्य से निःसृत तरंगें मानवों की बुद्धि पर नियंत्रण रखती हैं।

5. लघु चुम्बकीय विद्युत तरंगें (ब्रह्माण्डीय चित्त) :- यह वृत्त लघु चुम्बकीय विद्युत (तम=आल्फा) तरंगों से निर्मित है तथा ब्रह्म के चित्त (Super Computer) का कार्य करता है। यह पृथ्वी पर निवास करने वाले सम्पूर्ण प्राणियों के कर्मों का लेखा-जोखा का रिकार्ड रखता है तथा सभी प्राणियों को उनके कर्मानुसार फलाफल देने का कार्य करता है। सभी प्राणियों के चित्त, इस ब्रह्म के चित्त से चुम्बकीय विद्युत स्पन्दनों के माध्यम से जुड़े रहते हैं। कदाचित् बारह राशियाँ मानवों के चित्त का नियंत्रण करती हैं।

6. **अति लघु चुम्बकीय विद्युत तरंगें (ब्रह्माण्डीय अहंकार) :-** यह वृत्त अति सूक्ष्म (सत=गामा) तरंगों से निर्मित है तथा ब्रह्म के अहंकार का स्वरूप है। गामा तरंगें पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी प्राणियों के अहंकार पर नियंत्रण रखती हैं तथा जीवात्माओं के सृजन का कारण हैं।

7. **आनन्दमय कोश :-** सतत रहने वाले (स्थायी) आनन्द का वृत्त, जिसके अन्तर प्रदेश में निराकार **अव्यक्त ब्रह्म** का निवास माना गया है।

8. **चैतन्य सत्ता :-** आनन्द स्वरूप, सर्व ज्ञानमय, इच्छा एवम् क्रिया शक्ति से ओत-प्रोत, स्वयम् प्रकाशमान, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान सत्ता, **परम+आत्मा** के अंश अर्थात् ब्रह्म पूरे वृत्त के केन्द्र में स्थित माना गया है।

☞ **निदेश :-** *(a)* उपरोक्त चित्र से यह स्पष्ट है, कि विश्व के प्रत्येक स्तर पर जैसे-जैसे पदार्थ (mass) घटता जाता है, वह शक्ति तथा शक्ति कणों का रूप ले लेता है। शक्ति कण तरंगों के रूप में व्यवहार करने लगते हैं। जैसे-जैसे तरंगों की सूक्ष्मता में वृद्धि होती जाती है, उनकी भेदन क्षमता में वृद्धि होती जाती है। यह सारी प्रक्रिया प्रतिगामी (Reversible) भी है। आइंस्टीन द्वारा खोजा गया मात्रा एवम् शक्ति की परिवर्तनशीलता के सूत्र $E = mc^2$ से इस प्रक्रिया की पुष्टि हो जाती है। (E=शक्ति, m=पदार्थ (मात्रा) एवम् c=प्रकाश की गति = तीन लाख कि.मी. प्रति सेकंड)।

(b) क्रम संख्या तीन से लेकर छह तक की व्याख्या को समझने हेतु गणित एवम् फलित ज्योतिष की जानकारी लाभप्रद रहेगी।

(c) उपरोक्त स्पष्टीकरण के साथ-साथ इस सिद्धान्त का व्यावहारिक विस्तृत वर्णन निम्न पंक्तियों में दिया जा रहा है, इस चित्र के साथ-साथ वह भी पठनीय है।

-: मानव पिण्ड की रचना और विस्तार :-

यह सिद्धान्त सृष्टि की रचना एवम् मानव की रचना की समानता को बतलाने में पूरी तरह से सक्षम है [a]। मानव व्यवहार तथा विराट के व्यवहार में एकरूपता है, अतः मानव पिण्ड की रचना भी निम्न सात स्तरों पर विस्तृत है :-

(i) **भौतिक शरीर :-** यह दृश्यमान हाड़-माँस, रस रक्त, मेरु मज्जा एवम् वीर्य से युक्त भौतिक शरीर अनन्त कणों, परमाणुओं एवम् अणुओं के योग से बना है। मानव शरीर में स्थित कोशिकाएं विराट पुरुष में स्थित सूर्यों की सूक्ष्मांश हैं।

(ii) **प्राण अर्थात् ऊर्जा शरीर (Nuronic body) :-** अनेक आकाशगंगाओं से विकीरित कण एवम् परमाणु विराट पुरुष का प्राणमय कोश है। यह प्राणमय कोश आकाशगंगा का संचालन करता है तथा मानव शरीर अन्तरिक्ष से आने वाली इस ऊर्जा को अधिकांशतः सहस्रार के माध्यम से ग्रहण करता है तथा सुषुम्ना पर स्थित चक्र इस ऊर्जा को नाड़ियों द्वारा शरीर के सभी अंगों तक पहुँचाते हैं। (ब्रह्माण्डीय प्राण ऊर्जा का चित्र प्रथम सत्र के चित्र संख्या 1.02 पर देखें) मानव मन, बुद्धि, चित्त एवम् अहंकार सभी की क्रियाशीलता इसी ऊर्जा से होती

---

a 'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का चित्र संख्या-2.1। पर है ।

हैं। समान संस्थान (भोजन प्रणाली) द्वारा भोजन के पचने से उत्पन्न ऊर्जा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा शक्ति से मिलकर जीवन की प्रक्रिया को क्रियाशील रखती है और इसका संचालन पाँच प्रकार के प्राण प्रवाह द्वारा होता है, इस प्रकार यह मानव शरीर को पूरी तरह से सुचालित रखता है। पाँच प्राण प्रवाह संस्थान के नाम निम्न प्रकार से हैं :-

(a) प्राण (श्वॉस-प्रश्वॉस क्रिया) *(b)* व्यान (रक्त संचालन) *(c)* समान (पाचन प्रणाली) *(d)* अपान (रेचन प्रणाली) और *(e)* उदान (सोचना एवम् निर्णय संस्थान)। विज्ञान के अनुसार स्नायुसंस्थान (Sympathetic and Para Sympathetic Nervous System) ही इस सुसंचालन के लिए उत्तरदायी है [a]।

***(iii)* मन (Thinking Mind) :-** सुषुम्ना पर स्थित सभी चक्र चुम्बकीय विद्युत स्पन्दनों के माध्यम से चन्द्रमा एवम् ग्रहों, नक्षत्रों तथा सूर्यो से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार मानव के अन्तर में होने वाली हर क्रिया इन पिण्डों द्वारा पूरी तरह से नियंत्रित रहती हैं। नाभि के पीछे सुषुम्ना पर स्थित मणिपुर चक्र में एलेक्ट्रॉन (Electron) निरन्तर गतिशील रहता है, जिसकी गति के कम या अधिक होने से अगणित विचारों का जन्म होता है तथा मानवों के स्वभाव एवम् विचारों में विभिन्नता बनी रहती है एवम् उनकी मनोदशा में सतत् परिवर्तन होता

सुषुम्ना पर चक्रों की स्थिति

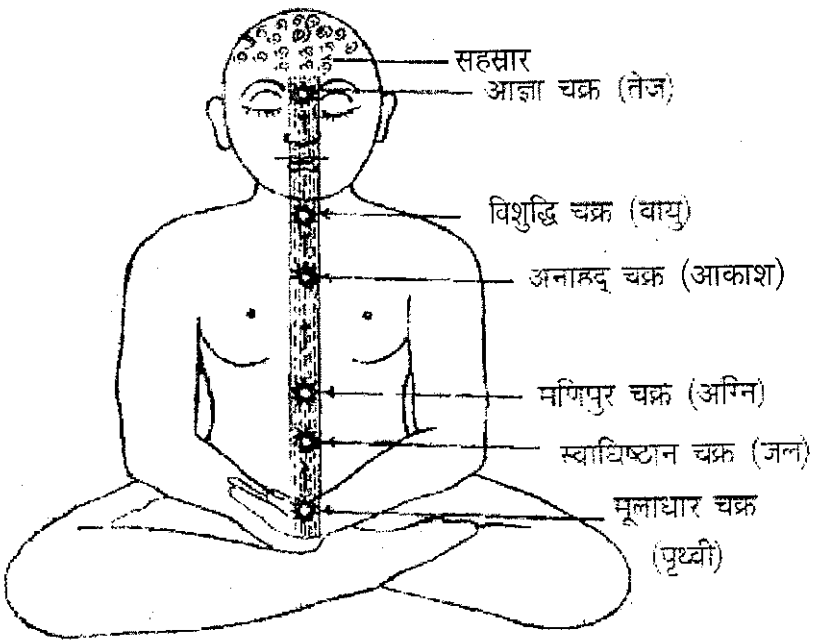

चित्र 2.12

a इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु *'प्राण-विज्ञान के शब्दों में'* नामक लेख 'स्नायु संस्थान' के चित्र सहित पुस्तक के भाग-3 में दिया गया है ।

रहता है। वह कभी उदास, कभी प्रसन्न, कभी उत्तेजित, कभी शान्त, कभी कामी, कभी भक्तिपूर्ण भावों में डूबा देखा जाता है।

(iv)* बुद्धि (Intellect) :-** एलेक्ट्रॉन (Electron) जब अन्तर प्रदेश अर्थात् नाभि (Nucleus) की पास की कक्षाओं में होता है, तब मन शान्त होने लगता है, जिससे समुचित निर्णय करने की शक्ति की क्षमता में वृद्धि होती है, उस काल में यह नियंत्रण केन्द्र 'आज्ञा चक्र' पर होता है। ***Electron की गति हर चक्र के पीछे सतत् होती रहती है। ऐसा प्रतीत होता है, कि अन्य चक्रों से उत्पन्न चुम्बकीय विद्युत शक्ति शरीर के विभिन्न अंगों, जैसे - हृदय, फेफड़े, आँतें, जिगर, गुर्दा आदि को क्रियाशील बनाए रखती है। परन्तु उनके कार्य अलग-अलग बँटे हुए हैं। उपरोक्त सभी तथ्यों पर वैज्ञानिक खोज की जानी चाहिए।

(v)* चित्त (Sub-Conscious Mind) :-** यह पश्चात् मस्तिष्क (Posterior part of CEREBRUM) पर स्थित होता है। लगता है, कि इस स्थान पर एक प्रोटॉन (Proton) पट्टी पर सभी प्रकार की सूचनाओं के लिखे जाने का नियंत्रण केन्द्र है। प्रथम तो सभी सूचनाएं मानव कोशिकाओं (Cells) में स्थित ***क्रोमोज़ोमों (Chromosomes) पर जीनों के रूप में लिखी जाती हैं तथा सभी ***'जीन'*** (Gene) मानव के उपरोक्त नियंत्रण केन्द्र से जुड़े रहते हैं। यह नियंत्रण केन्द्र (Computer) अर्थात् चित्त, विराट के प्रोटॉन तारा मण्डल (Super Computer) से चुम्बकीय विद्युत तरंगों द्वारा जुड़ा रहता है। एक बार भी ***'कर्म का बीज'*** अच्छा अथवा बुरा 'चित्त' में बोया गया, तो उसका फल भोगे बिना जीव का छुटकारा हो ही नहीं सकता। ***कोई भी जीवात्मा इस कर्म के सिद्धान्त से ऊपर नहीं है।*** इस प्रकार सभी जीवात्माएं अपने कर्मों द्वारा किए गये चार प्रकार के फलाफल (मान/अपमान; पुरुस्कार/दण्ड; स्वस्थ शरीर/रोगी काया; उच्च/निकृष्ट योनि) भोगने हेतु विवश रहती हैं।

(vi)* अहंकार (Ego) :-** यह अहंकार (अहम्+आकार) नाम की परत मानव को ईश्वर से जोड़ने अथवा अलग बनाए रखने वाली अन्तिम परत है। खोपड़ी के शीर्ष स्थान को सहस्रार (Cortex) कहा जाता है। यह सहस्रार हजारों नस-नाड़ियों से बना एक जटिल नाड़ी तन्त्र है। इन नाड़ियों में अति तीव्र गति से चुम्बकीय विद्युत स्पन्दन होते रहते हैं। कदाचित् इन स्पन्दनों की गति 40,000 चक्र (Cycle) प्रति सेकण्ड अथवा इससे भी अधिक होती है। इस शीर्ष स्थान को 'मेरु शिखर' के नाम से भी जाना जाता है। यह सहस्रार विराट पुरुष के न्यूट्रॉन तारों से निर्मित आकाशगंगा के केन्द्रीय स्तम्भ (शिव लोक) से चुम्बकीय विद्युत स्पन्दनों के माध्यम से जुड़ा रहता है। ऐसा माना जाता है, कि मूलाधार में स्थित कुंडलिनी को जब गहन ध्यान के अभ्यास द्वारा सहस्रार चक्र तक उठा कर ले आयां जाता है, ***तब कुंडलनी में स्थित जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार (Information) चुम्बकीय विद्युत (nuronic) स्पन्दनों के सम्पर्क में आने से मिट (Demagnetise हो) जाते हैं और आल्फा (तम) प्लेट पूर्ण रूप से शून्य हो जाती है। बस, उसी क्षण तीनों तरंगें - आल्फा, बीटा एवम् गामा, सिमट कर आकाशगंगा के केन्द्र में समा जाती हैं, यही मोक्ष कहलाता लगता है। तब जीवात्मा आवागमन के चक्र से सदैव के लिए मुक्त हो जाती है। वैज्ञानिक खोज द्वारा उपरोक्त बातों की पुष्टि की जानी चाहिए।

***(vii)* आनन्द :-** अन्तिम परत आनन्द की है, जिसके भीतर आत्मा का निवास है।

उपरोक्त छह परतों को पार करते ही जीव सघन एवम् सतत् रहने वाले आनन्द की परत को छू लेता है और इसी को ईश्वर साक्षात्कार अथवा सच्चिदानन्द (सदैव रहने वाले आनन्द) की प्राप्ति कहा जाता है। मानव अपनी बुद्धि के सदुपयोग द्वारा इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। ***परमात्मा सतत् इस आनन्द की परत के पीछे रहता है और उस आनन्द की परत से ही प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया (आल्फा, बीटा, गामा) तरंगों का आविर्भाव होता है तथा पूरी सृष्टि की रचना, विस्तार एवम् विघटन इन तीन तरंगों का खेल मात्र है, जो सतत् चलता रहता है।*** विज्ञान द्वारा उपरोक्त वैदिक धारणाओं की पुष्टि की जानी चाहिए।

उपरोक्त सातों परतें ब्रह्म (विराट पुरुष) में भी स्थित हैं, जो ***'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'*** सिद्धान्त के चित्र संख्या 2.11 में दिखलायी गयी हैं। यह एक महान सिद्धान्त है, जिसे भारतीय ऋषियों ने ही समझा है, *अतएव* ***वे ऋषि सहस्रों बार प्रणाम करने योग्य हैं और बधाई के पात्र भी हैं।***

आधुनिक विज्ञान को अपने द्वारा खोजे गये ज्ञान को श्रेणीबद्ध करने तथा इस समझ तक पहुँचने में अभी पर्याप्त समय लगेगा। फिर भी प्राचीन ऋषियों की शब्दावली को आज की वैज्ञानिक शब्दावली के द्वारा कुछ अधिक ठीक से समझने-समझाने में सुविधा हुई है, विशेषकर विज्ञान के विद्यार्थियों को विज्ञान सम्मत जानकारी से बहुत लाभ होने की सम्भावना है। इसका एक विशेष कारण यह भी है, कि सनातन धर्म की समझ को आधुनिक विज्ञान के शब्द ही भावी पीढ़ी को प्रेरणा देंगे और वैदिक सनातन धर्म का प्रचार एवम् विस्तार आधुनिक विज्ञान द्वारा ही होगा, ऐसा विश्वास है।

-: महापिण्ड अर्थात् विश्व की रचना और विस्तार :-

(i) स्थूल (भौतिक) शरीर :- परमात्मा (महामानव=परब्रह्म) का शरीर अरबों आकाशगंगाओं से मिलकर बना है। इसमें हमारी आकाशगंगा भी एक है। वे अरबों ***आकाशगंगाएं,*** जिनमें अनन्त सूर्य हैं, ***परमात्मा*** के शरीर के हड्डी, माँस-मज्जा आदि हैं। इनमें से लाखों-लाखों-लाखों रोड़े पिण्डों का निरन्तर सृजन होते रहना अथवा विघटन होते रहना मानव शरीर की भाँति बनती-टूटती कोशिकाएँ (cells) हैं। यह क्रिया हमारी आकाशगंगा सहित सभी आकाशगंगाओं में निरन्तर होती रहती है।

(ii) विश्व प्राण (ऊर्जा) :- आकाशगंगाओं द्वारा निरन्तर ऊर्जा कणों की वर्षा [a] से निर्मित विराट पुरुष का ऊर्जा शरीर विश्व प्राण है। चूँकि शक्ति के स्थायित्व के नियम (Law of Conservation of Energy) के कारण ऊर्जा का कभी भी विनाश नहीं होता, वह तो मात्र रूपान्तरित होती रहती है, इसी कारण से अनेक आकाशगंगाओं से प्रेक्षित ऊर्जा कण किसी न किसी अन्य मृत पड़ी आकाशगंगा को जीवित करते रहते हैं और इसी प्रकार हर आकाशगंगा अपना जीवन चक्र पूरा करने के पश्चात् विघटित हो जाती है और पुनः जन्म लेती है। ऋषियों ने हमारी आकाशगंगा के कार्यकाल का गणित 31 नील, 10 खरब, 40 अरब ($31,10,40 \times 10^9$) सौर वर्ष किया है। भागवत पुराण[b] में कथा आई है, कि भगीरथ ने घोर

---

a 'विश्व प्राण ऊर्जा' का चित्र प्रथम सत्र के संख्या-1.02 पर है ।

b *श्रीमद् भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, पन्द्रहवाँ संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2047 पृष्ठ 39-40*

तपस्या द्वारा अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु गंगा जी को पृथ्वी पर अवतरित किया। इस प्रकार गंगाजी के स्पर्श से राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को स्वर्ग की प्राप्ति हुई [a]। प्रतीकों की भाषा में लिखी गयी, इस कथा का वैज्ञानिक अर्थ कदाचित् यह निकलता है, कि सभी आकाशगंगाओं से निरन्तर (भगीरथ) ऊर्जा का विकीरण होता रहता है। इस ऊर्जा से ऐसा नहीं है, कि मात्र महाकाश में मृत पड़ी कोई आकाशगंगा ही जीवन प्राप्त कर रही होती है, ***अपितु पृथ्वी पर बरसने वाले चुम्बकीय विद्युत कणों (एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवम् न्यूट्रॉनों) के संयोग के कारण कदाचित् हर क्षण साठ हजार जीवात्माओं का सृजन भी हो रहा होता है, क्योंकि संसार का कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जो इन तीन कणों से मिलकर न बना हो।*** जीवात्मा का अर्थ हम बहुधा मात्र यह समझते हैं, कि जो क्रियाशील हो, जो भावी संतान उत्पन्न कर सकती हो तथा जिसके शरीर में एक, दो अथवा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का विकास हुआ हो इत्यादि। सर्वप्रथम जीवात्मा सम्बन्धी एक बात स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है, कि लोहे अथवा मिट्टी का टुकड़ा भी उतना ही जीवन्त है, जितना कि एक शेर, क्योंकि हर पदार्थ चाहे वह ठोस, तरल अथवा गैस की स्थिति में ही क्यों न हो, उसके भीतर अणु-परमाणु वर्तमान हैं, तथा हर परमाणु में एलेक्ट्रॉन गतिशील हैं। प्रत्येक पदार्थ की नाभि (Nucleus) के चारों ओर एलेक्ट्रॉन 600 मील प्रति सेकंड की गति से घूमता रहता है, अतएव वह परमाणु क्रियाशील तो है ही। जीवन्तता का यही आधार है। विभिन्न अनुपातों में तमाम तरह के परमाणुओं के संयोग के पश्चात् ही जीव विज्ञान की परिभाषा के अन्तर्गत समझा जाने वाला जीवित प्राणी का सृजन होता है, तभी वह संतति उत्पन्न कर सकने की क्षमता प्राप्त कर पाता है। वैदिक ऋषियों का मानना है, कि कण-कण में परमात्मा का निवास है। जीवन सर्वत्र है, सार्वकालिक और व्यापक है, अतएव श्री गंगाजी (जीवन) विष्णु चरणों (प्रोटॉन तारा समूह) से निःसृत हैं और उन्हें शंकर जी (न्यूट्रॉन) कणों का सहारा मिलते ही मृतप्राय जीवात्माएं [b] (सगर पुत्र) जीवन्त हो जाती है।

(iii)-(iv)* ब्रह्माण्डीय मन एवम् बुद्धि के केन्द्र :-** आकाशगंगाओं में स्थित सूर्य (हमारा सूर्य समेत), अपनी चुम्बकीय विद्युत शक्ति के द्वारा पृथ्वी के चारों ओर स्थित ग्रहों तथा चन्द्रमा को प्रभावित करते हैं और ये ग्रह तथा चन्द्रमा मिलकर मानव तथा पृथ्वीवासी सभी प्राणियों की मन और बुद्धि पर नियंत्रण रखते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है, कि सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण अलग-अलग ग्रहों की सूर्य से दूरी, उनका परिक्रमा पथ, उनकी घूर्णन (Rotation) तथा उनकी परिक्रमा (Revolution) की गति आदि नियंत्रित होते हैं। उपरोक्त सभी अवयवों के संयुक्त प्रभाव के कारण सूर्य से आने वाली सात रंगों की प्रकाश रश्मियों को विखण्डित करके हर ग्रह अलग-अलग रंगों को पृथ्वी पर बिखेरता है। ***इन सभी ग्रहों द्वारा प्रक्षेपित अलग-अलग रंगों की तरंगें अलग-अलग स्पन्दनों (frequencies) की होती हैं, अतएव मानव मस्तिष्क पर प्रभाव भी अलग-अलग ही होता है। सूर्य द्वारा ग्रहों पर प्रभावी आकर्षण शक्ति का सूत्र है :-

---

a "गंगावतरण का प्रतीकात्मक स्वरूप" का चित्र प्रथम सत्र के संख्या-1.01 पर है।

b इस सम्बन्ध में पुस्तक के भाग-3 में *'गंगा-आकाशगंगा का प्रतीक'* नामक लेख संलग्न है।

$$P = \frac{G \times M_1 \times M_2}{d^2} \quad \text{न्यूटन}$$

सूत्र में प्रयुक्त संक्षिप्त शब्दावली का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से है -

M_1 = सूर्य पिण्ड की पदार्थ की मात्रा (Mass)

M_2 = ग्रह पिण्ड की पदार्थ की मात्रा (Mass)

d = दोनों पिण्डों के मध्य की दूरी मीटरों में

G = दो पिण्डों के बीच की आकर्षण शक्ति

P = कुल शक्ति का माप न्यूटन इकाई में

इस लोक को जनः लोक भी कहा गया है। सम्भव है, कि इस लोक में कुछ पुण्यात्मा लोग स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करने हेतु पहुँचते हों।

***(v)* ब्रह्म अर्थात् विराट पुरुष का चित्त :-** हमारी आकाशगंगा के उस भाग को, जहाँ पर नीले और सघन प्रोटॉन तारे स्थित हैं, बैकुण्ठ लोक के नाम से जाना जाता है। यह तारा समूह सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राणियों के कर्मों के फलाफल का नियंत्रण करता है। हर प्राणी के चित्त (Computer) इस विराट के चित्त (Super Computer) से जुड़े रहते हैं। ऐसी अगणित आकाशगंगाएं हैं और उन सभी में इसी प्रकार की व्यवस्था होने की सम्भावना है। हमारे ऋषियों ने अपनी आकाशगंगा की पूरी-पूरी छानबीन करके शेष को नेति-नेति (अन्त नहीं मिला है) कह कर छोड़ दिया। इस लोक को तपः लोक भी कहा गया है। सम्भव है, कि इस लोक में अति मर्यादाशील एवम् तपस्वी ही पहुँच पाते हों। मुक्ति प्राप्त साधकगण इस लोक में निवास करते हैं।

(vi)* विराट पुरुष का अहंकार :-** आकाशगंगा के केन्द्र में तीव्र प्रकाश से प्रकाशमान एक लाख प्रकाश वर्ष लम्बा न्यूट्रॉन तारों का स्तम्भ है। यह स्तम्भ पूरी आकाशगंगा के वज़न का 2/3 वज़न वाला है तथा सम्पूर्ण ***'ब्रह्मलोक' एवम् ***'बैकुण्ठ'*** लोक को धारण किए हुए है। हमारी आकाशगंगा के उद्भव के समय सबसे पूर्व यही स्तम्भ उत्पन्न हुआ था, तत्पश्चात् इसी स्तम्भ से ***'बैकुण्ठलोक'*** तथा ***'ब्रह्मलोक'*** के तारों का निर्माण हुआ। इन्हीं के साथ सृष्टि को विघटित करने वाले ***'ग्यारह रुद्रों'*** का जन्म भी हो गया [a]। वे रुद्र पूरी आकाशगंगा में तारों-सितारों के बीच स्थित रहकर अपनी विघटन की कार्यवाही लगातार करते रहते हैं और इस प्रकार जो सूर्य ठंडे हो जाते हैं, वे ***'शिव-लोक'*** अर्थात् न्यूट्रॉन तारों के इस स्तम्भ के चारों ओर आकर श्याम विवर (black hole) बन कर लिपट जाते हैं ***(इसी को कदाचित् प्रतीकों की भाषा में भगवान शंकर के गले में पड़ी मुण्डों की माला बतलाया गया है)*** तत्पश्चात् पूरी आकाशगंगा अपना कार्यकाल पूरा करके अदृश्य हो जाती है और सृष्टि की पुनर्रचना हेतु पूर्वोक्त श्याम विवर, स्त्री योनि का कार्य सम्पादन करते हैं तथा अपने गर्भ से एक प्रकाश स्तम्भ पुनः उत्पन्न करते हैं। इसके अनन्तर उसी प्रकार पूरी आकाशगंगा के

---

a इस सम्बन्ध में ***प्रथम सत्र*** में चित्र संख्या-1.05 सहित *'सृष्टि निर्माण, पालन एवम् संहार-एक वैज्ञानिक परिकल्पना'* शीर्षक के अन्तर्गत चर्चा की गयी है ।

सूर्य, चन्द्र एवम् पृथ्वियों आदि का आविर्भाव हो जाता है [a]। इस लोक को ***'महर्लोक'*** भी कहा गया है। सम्भव है, कि यहाँ पर महान आत्माएं ही पहुँच पाती हों। यहाँ मोक्ष प्राप्त जीवात्माओं का पूर्ण रूप से विलय हो जाता है।

(vii) **आनन्द लोक :-** यह लोक अदृश्य रहता है तथा इसे ***'सत्यम्'*** भी कहा गया है। ***इसके पीछे अव्यक्त ब्रह्म का निवास है, जो अति सूक्ष्म है और मानव मन जिसकी कल्पना भर कर सकता है।*** परन्तु हमारे ऋषियों ने पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त की है और वे हमें कथाओं के माध्यम से लिखकर बतला भी गये हैं। कलियुग में कुछ अर्ध शिक्षित लोग, इन महान सत्यों को समझे बिना मखौल बनाने तथा चुनौती देने में संलग्न रहते हैं। ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करें !

नोट :- *प्रथम सत्र में नौ प्राकृतिक सिद्धान्तों की चर्चा संक्षेप से की गयी है। उन नौ सिद्धान्तों में से छह सिद्धान्तों पर इस सत्र में कुछ विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। शेष तीन सिद्धान्तों में से* ***'निष्काम सेवा'*** *(यज्ञमय जीवन यापन) पर चर्चा इस सत्र के प्रारम्भ में की जा चुकी है तथा शेष दो सिद्धान्त* ***'निर्गुण-निराकार'*** *एवम्* ***'सगुण-साकार'*** *उपासना पद्धतियों पर यथास्थान चर्चा की जायेगी।*

हरिः ॐ तत् सत् !

---

a इस सम्बन्ध में ***चतुर्थ सत्र*** में *'सृष्टि सृजन प्रक्रिया-एक परिकल्पना'* शीर्षक के अन्तर्गत चित्र संख्या-4.06 सहित विस्तार से चर्चा की गयी है ।